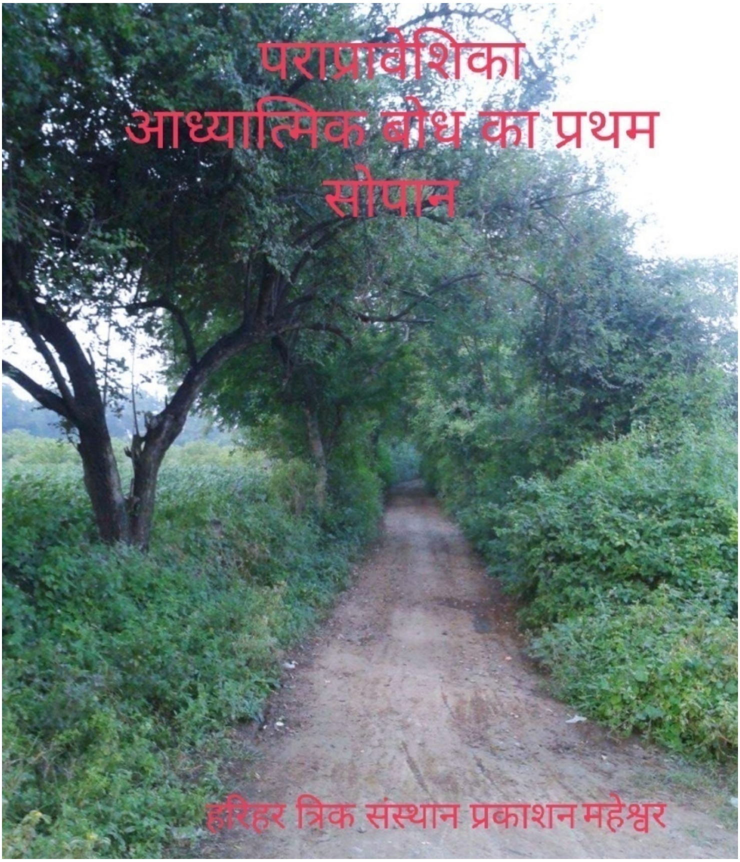
पराप्रावेशिका
आध्यात्मिक बोध का प्रथम
सोपान
हरिहर त्रिक संस्थान प्रकाशन महेश्वर

परम पूज्य माँ प्रभा देवीजी।

आचार्य क्षेमराज विरचित

पराप्रावेशिका

शिव की काव्यात्मक नृत्यात्मक सृष्टिरूप अभिव्यक्ति पर

अध्यात्म की प्रथम पुस्तक

सरल भाषा में

हरिहर त्रिक आश्रम महेश्वर में

आयोजित व्याख्यानों पर आधारित

हरिहर त्रिक संस्थान प्रकाशन

महेश्वर

२०२१

हरिहर त्रिक आश्रम के बारे में

हरिहर त्रिक आश्रम नर्मदा के उत्तर तट पर महेश्वर मध्यप्रदेश में स्थित है जो पिछले ११ वर्षों से काश्मीर शैव दर्शन के लिए समर्पित है। इसका संचालन विश्वात्मा न्यास महेश्वर के अंतर्गत होता है। इसकी स्थापना परमपूज्य गुरुदेव श्री हरिविलासजी आसोपा की सदेच्छा के अनुरूप हुई थी। जनवरी २०१० से यहाँ प्रति गुरुवार संध्या त्रिक दर्शन पर आधारित व्याख्यान आयोजित होते हैं। ये व्याख्यान मूलतः उन सामान्य श्रोताओं को लक्षित होते हैं जो त्रिक दर्शन से अधिक परिचित नहीं हैं इसलिए इन व्याख्यानों में सरल शब्दों एवं बोलचाल की भाषा का उपयोग किया गया है। कुछ साधकों ने इन व्याख्यानों को पुस्तिका का रूप दे दिया है। ये साधक साधुवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत पुस्तिका को अध्यात्म की प्रथम पुस्तक कहा जा सकता है क्योंकि अद्वैत के शिखर 'त्रिक-दर्शन' या काश्मीर शैव दर्शन को समझने के लिए सृष्टि की संरचना को समझना प्रथम सोपान है।

Website: - https://harihartrik.in
Email: - harihartrikashram@gmail.com
Harihar Trik Ashram
27, Panchvati Colony Maheshwar
District Khargone Madhya Pradesh
PIN 451 224
Contact: - Trustees of Vishwatma Trust
Shree Ajay Joshi 9425334174,
Shree Chandrabhushan Mahajan 8878855110
Shree Raghuraj Patidar 9926913413
Shree Daulal Motilal Saraf 9425087882

Price: - Love for Truth.

यह पुस्तक ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजू महाराज की शिष्या एवं काश्मीर शैव दर्शन की मूर्तरूप माँ प्रभादेवीजी को समर्पित है।

परमपूज्य माँ प्रभादेवीजी का आशीर्वाद एवं पद्मश्री सुधीरजी सोपोरी, पूर्व उपकुलपति जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय नई दिल्ली, की शुभकामनाएँ।

Dear Mohan Lal Gupta ji
I am sorry for late response.
I talked to Devi ji who was very happy that you are reaching out to more people with your discourses on Shaiva texts. Her blessings are with you.

"I have earlier read the Hindi translation of Prapraveshika by Prabha Devi ji. That gives a broad perception of the meaning of the shlokas but even that text may not clarify the depth of the message to a common person who is not tuned with the Advait thought of Kashmir Shaivism. Dr Gupta's lectures have explained in details the context and content of the overall meaning which Parapraveshika was meant to convey. These will be very useful to anyone who is desirous of learning the tenets of Kashmir Shaivism, a wonderful job by explaining things in with present day examples and also with scientific logic. I am sure the publication of these lectures will benefit all the seekers of knowledge in this domain. Dr. Gupta has received Devi ji's blessing and shaktipat to take forward the task of enlightening the public. God bless him in all his endeavors."
Regards,

SKSopory,

Faridabad 25th October 2021

जैसे किसी कवि के हृदय में काव्य रचित होता है और तदन्तर संसार में जन्म लेता है, जैसे एक चित्र चित्रकार के हृदय पटल पर उभरता है फिर कैनवास पर उतरता है, वैसे ही यह संसार शिव चेतना में रचा जाता है और तदन्तर इसकी बाह्य अभिव्यक्ति होती है।

प्राक्कथन

प्रिय पाठकगण,

ग्यारहवीं सदी में आचार्य अभिनवगुप्तजी के शिष्य आचार्य क्षेमराजजी ने पराप्रावेशिका नामक संक्षिप्त रचना लिखी थी जिसका उद्देश्य काश्मीर शैव दर्शन अथवा त्रिक दर्शन के अंतर्गत साधकों को छत्तीस तत्त्वों का बोध करवाना था। छत्तीस तत्त्व अद्वैत शैव दर्शन को समझने के लिए अनिवार्य भी हैं और अतिमहत्वपूर्ण भी। इन तत्त्वों के रहस्य को समझने मात्र से साधक में अद्वैत दृष्टि विकासित हो सकती है। यहाँ पर इस संक्षिप्त रचना को सरल शब्दों में समझाने का प्रयास किया गया है। द्वितीय व्याख्यान में आयी पुनरावृत्तियों को वैसे ही रहने दिया गया है। दोनों व्याख्यान अपने आप में पूर्ण हैं। एक ही बात को भिन्न अवसरों पर अलग-अलग तरह से कहना आरंभिक समझ के लिए उपयोगी हो सकता है। केंद्र में पराप्रावेशिका है लेकिन अद्वैत को समझने के लिए अन्य ग्रंथों और विज्ञान की अवधारणाओं का उपयोग किया गया है।

डॉ. मोहन लाल गुप्ता

८३, पंचवटी कॉलोनी महेश्वर

मध्यप्रदेश ४५१ २२४

मोबाइल: - ९३२९४३५७७८

दीपावली २०२१

परमेश्वर की सृष्टि एक इकाई है। इसकी विभिन्न संरचनाओं के मूल में एकमात्र अभिन्न तत्त्व को देखना ही ज्ञान है। संसार और परम सत्ता में कोई आधारभूत अंतर नहीं है।

छत्तीस तत्त्वों के रहस्य को जानने पर हमें शिव से धरती तक परमेश्वर की निरंतरता और अविच्छिन्नता का बोध होता है। यही बोध हमें वह क्षमता देता है जिससे हम माया के गहन अन्धकार के पार प्रकाश देख सकें। यही मनुष्य को प्राप्त ईश्वरदत्त विवेक की सर्वोत्तम सार्थकता है।

ईश्वरबोध की सार्थकता इस जीवन से परे ही नहीं है वरन यह बोध हमारे शेष जीवन में परम शान्ति और स्थिरता प्रदान कर इसे आनंदरूप बना देता है।

जिससे यह संसार प्रकट होता है और जिसमें अंततः पुनः लौट कर समा जाता है, संसार के उस आदिकारण शिव को प्रणाम कर उससे स्वयं के रहस्य को प्रकट करने की विनती है।

''माया कितना भी ढँक ले, शिव का प्रकाश ऋषियों के सरल हृदय में प्रकट हो कर संसार को मिल ही जाता है''।

अनुक्रमणिका

प्रथम अनुभव	पृष्ठ क्रमांक १
आरंभिक अवधारणा	पृष्ठ क्रमांक १
हम सृष्टि के रचनाकार हैं, दर्शक नहीं	पृष्ठ क्रमांक २
मनुष्य स्वयं से अपरिचित	पृष्ठक्रमांक ४
परमेश्वर चैतन्य स्वरूप है	पृष्ठ क्रमांक ५
विमर्श ही शक्ति है	पृष्ठ क्रमांक ८
जड़ एवं चेतन का भेद	पृष्ठ क्रमांक १०
संसार के खेल में भिन्नता आवश्यक	पृष्ठ क्रमांक ११
मायाकी आवश्यकता	पृष्ठ क्रमांक १३
माया कैसे काम करती है?	पृष्ठ क्रमांक १४
भौतिकशास्त्र का आध्यात्मिक सिद्धांत	पृष्ठ क्रमांक २०
अद्वैत का आनंद	पृष्ठ क्रमांक २१
हमारे जीवन की दिशा	पृष्ठ क्रमांक २२
कहाँ खोजें उसे?	पृष्ठ क्रमांक २४
संसार शिव की कविता है	पृष्ठ क्रमांक २७
अशुद्ध अध्वा का आरम्भ	पृष्ठ क्रमांक ३०
सूक्ष्म से स्थूल का निर्माण	पृष्ठ क्रमांक ३७
हम क्या हैं?	पृष्ठ क्रमांक ३९

##

द्वितीय अनुभव	पृष्ठ क्रमांक ४१
पराप्रावेशिका का उद्देश्य	पृष्ठ क्रमांक ४१

अगली पीढ़ी के लिए विरासत	पृष्ठ क्रमांक ४१
इस संसार के दो पहलू	पृष्ठ क्रमांक ४३
शुद्ध एवं अशुद्ध मार्ग	पृष्ठ क्रमांक ४४
सृष्टि रचना का आरम्भ शिव विमर्श में	पृष्ठ क्रमांक ४५
शिव ही हमारा घर है	पृष्ठ क्रमांक ५१
सापेक्षिकता एवं समय-अंतरिक्ष का रिश्ता	पृष्ठ क्रमांक ५४
क्या शिव को नापा तौला जा सकता है?	पृष्ठ क्रमांक ५५
शिव और जीव के बीच अंतर	पृष्ठ क्रमांक ५७
हम ज्ञानेन्द्रियों की कैद में हैं	पृष्ठ क्रमांक ५८
हमारे अहंकार के तीन स्तर	पृष्ठ क्रमांक ६०
सर्वोच्च अहंता के अभिलक्षण	पृष्ठ क्रमांक ६१
पांच तन्मात्रायें और पांच महाभूत	पृष्ठ क्रमांक ६३
संसार योगी की दृष्टि में	पृष्ठ क्रमांक ६५
बुद्धि से सनातनता का बोध क्यों नहीं होता?	पृष्ठ क्रमांक ६६
शिव का नृत्य	पृष्ठ क्रमांक ६६
जीवन मुक्त मनुष्य	पृष्ठ क्रमांक ६९

प्रथम अनुभव

आज दिनांक १४ नवम्बर २०१३ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। यह आश्रम मूलतः काश्मीर शैव दर्शन को समर्पित है, काश्मीर शैव दर्शन अध्यात्म का शिखर है। यहाँ हम धर्म की नहीं, अध्यात्म की बात कर रहे है। संसार में कई संगठित धर्म प्रचलित हैं, मनुष्य निर्मित धर्म एक सीमित अवधारणा है। जो संगठित धर्म हैं उनमें भी अलग अलग मार्ग हैं। लेकिन इन सबसे हटकर, इन सबसे सर्वोपरि परमेश्वर है जो किसी मार्ग से बंधा हुआ नहीं है। परमेश्वर को किसी भी सीमा में बांधा नहीं जा सकता। जो सबसे पहले था वह असीम, अनादि और सबका एकमात्र स्वामी है, वही सर्वेश्वर है।

आरंभिक अवधारणा

आज हम एक संक्षिप्त ग्रन्थ के आधार पर चर्चा करेंगे जिसकी रचना आचार्य अभिनवगुप्त के विद्वान शिष्य आचार्य क्षेमराजजी ने ग्यारहवीं सदी में की थी। इस ग्रन्थ में सृष्टि के उन घटकों का परिचय है जिन्हें परमेश्वर ने सृष्टि निर्माण के क्रम में स्वयं के विमर्श से उत्पन्न किया था।

शिव ही इन घटकों का एकमात्र स्रोत है। संसार शिव की ही अभिव्यक्ति है, शिव का ही विकास है, संसार शिव ने स्वयं से ही निर्मित किया है। संसार को शिव के रूप में जानना ही अध्यात्म में प्रवेश का द्वार है। शिव से ले कर पृथ्वी तक सृष्टि निर्माण के ३६ तत्त्व हैं जिनका सन्दर्भ अद्वैत शैव दर्शन के प्रत्येक ग्रन्थ में तथा प्रत्येक स्तर पर मिलता है। इसीलिये इस ग्रन्थ का नाम पराप्रावेशिका रखा गया है। इसके अलावा अंत में आचार्य ने जीवनमुक्त मनुष्य के अभिलक्षण बताये हैं। जीवन मुक्ति वह अवस्था है जब व्यक्ति के समस्त कर्मफल नष्ट हो जाते हैं, वर्तमान जन्म के बचे हुए समय में किये जाने वाले कर्म भी कोई फल देने में असमर्थ होते हैं और मृत्यु उपरांत वह शिव में विलीन हो जाता है। यहाँ शिव कोई व्यक्ति नहीं वरन समग्र अस्तित्व का नाम है। यहाँ हम परमेश्वर की या परशिव की बात कर रहे हैं जो समस्त सृष्टि का जनक है, जो सृष्टि के जन्म के पहले से था।

हम सृष्टि के रचनाकार हैं, दर्शक नहीं

हम जानते हैं कि कोई भी घटना घटती है उसका जब तक कोई साक्षी नहीं है, कोई चेतना उसकी साक्षी नहीं है, तब तक उस घटना का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे कि अगर संसार में एक भी व्यक्ति न हो और संसार बहुत सुन्दर हो तो ये कौन कहेगा कि संसार सुन्दर है, इस सुन्दरता का कोई अस्तित्व नहीं होगा। यह सुन्दरता, यह आनंद, जड़ संसार में नहीं है वरन चेतना में निहित है। इसलिए हरेक

घटना के पहले एक चेतन अस्तित्व का होना जरूरी है, जिसे इस घटना से सरोकार हो, जो इस घटना का साक्षी हो। साक्षी मूक दर्शक नहीं वरन सृष्टि का रचयिता है। ब्रह्माण्ड जब बना उस पहले क्षण भी एक चैतन्य तत्त्व था जिसे इस अभिव्यक्ति की इच्छा थी। ब्रह्माण्ड के साथ में पदार्थ बना, अन्तरिक्ष बना और समय बना। उससे पहले समय की कोई सत्ता नहीं थी क्योंकि समय बिना अन्तरिक्ष के नहीं रह सकता, तब अन्तरिक्ष भी नहीं था। अन्तरिक्ष, समय और पदार्थ का निर्माण एक साथ हुआ और तीनों एक ही तत्त्व से बने जिसको हम शिव कह सकते हैं, साथ ही सृष्टि में शक्ति तथा अविद्या का अविर्भाव भी शिव से हुआ। अविद्या अज्ञान का आवरण है जिसे माया कहते हैं। शिव अपने आप में सम्पूर्णता लिए हुए होता है, उसमें किसी तरह की कोई कमी नहीं है, न किसी तरह की कोई कामना, न ही किसी तरह का अभाव। उसने जब सृष्टि बनाई, उसके पास बनाने के लिए कोई पदार्थ नहीं था, उपादान नहीं था। समय उसने अपने आप से बनाया, पदार्थ उसने अपने आप से बनाया। इसलिए हमको जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वस्तुओं के रूप में जो दिखाई दे रहा है, अपनों के रूप में, परायों के रूप में, जो अच्छे-बुरे के रूप में दिखाई दे रहा है वह सब शिव है। अन्तरिक्ष जिसमें हम रहते हैं, सूरज चाँद सितारे दिखाई दे रहे हैं वे मात्र शिव हैं और शिव के सिवाय कुछ भी नहीं हैं। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को निहार रहा है तो कह सकते हैं कि “शिव ने अपने अस्तित्व से वह वस्तु बनायी और उसे स्वयं निहार रहा है”।

सृष्टि के अनगिनत रूपों में उसने अपने आप को ही अभिव्यक्त किया है, इसलिए ईश्वर दर्शन के लिए हमको कहीं और भटकने की जरूरत नहीं है, ईश्वर के दर्शन सदा, सदैव निरंतर आँखे खोलकर भी हो रहे हैं, आँखें बंद करने पर भी हो रहे हैं। अन्धेरा भी शिव है उजाला भी शिव है, हम स्वयं भी शिव हैं और सृष्टि में शिव के सिवाय कुछ भी नहीं है।

मनुष्य स्वयं से अपरिचित है

एक कार में सैकड़ों पुर्जे होते हैं, जैसे इंजिन, पहियें, स्टीयरिंग, सीट। सबको अलग करने के बाद में अगर हम ढूंढेंगे कि कार कहाँ है? तो कार दिखाई नहीं देगी। हर चीज अलग अलग दिखाई देगी, प्रत्येक पुर्जे का कुछ नाम भी होगा कुछ रूप भी होगा लेकिन उन सब पुर्जों को मिलाने के बाद ही कार बनेगी, उसमें से **हर पुर्जा कह सकता है "मैं तो कार नहीं हूँ", जैसे हम कहते हैं कि "मैं शिव नहीं हूँ"।** लेकिन सत्य यही है कि हम सब मिलकर ही शिव हैं। शिव कहीं दूर नहीं बैठा है। हम शिव को अलग और अपने आपको उससे अलग दीन-हीन गरीब की तरह देखते हैं। ब्रह्माण्ड एक इकाई है जिसके हम हिस्से पुर्जे हैं। हम उससे अथवा स्वयं से अलग हटकर ब्रह्माण्ड की व्याख्या नहीं कर सकते। इसलिए ब्रह्माण्ड जब बना तो पहले क्षण भी एक चेतना उपस्थित थी, जिस चेतना के निमित्त ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ और उसी चेतना को हम शिव कहते हैं। वही आदि चेतना है जिससे इस संसार का जन्म हुआ। जैसे हम मिट्टी को घड़े का रूप देते

हैं, पत्थर को मूर्ति का रूप देते हैं वैसे ही उसने अपने आप को सृष्टि का रूप दिया इसलिए जो कुछ है वही है।

परमेश्वर चैतन्य रूप है।

परम सत्ता की अवधारणा को उपनिषदों ने बहुत सार रूप से समझाया है, वैसे ही सार रूप से शिवसूत्रों में समझाया गया है। कई शास्त्रों का जो पहला सूत्र होता है वही अपने आप में बहुतकुछ समझा देता है, पूरे शास्त्र की व्याख्या पहला ही सूत्र कर देता है। जैसे प्रथम उपनिषद ईशोपनिषद का सबसे पहला सूत्र "ईशावास्यम इदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनं"॥ और शिवसूत्र का प्रथम सूत्र है "चैतन्यमात्मा", प्रथम सूत्र कहता है चैतन्य ही आत्मा है अर्थात अंतिम सत्य है, किसका अंतिम सत्य? सब कुछ का, याने निरपेक्ष रूप से अंतिम सत्य है। हमने पढ़ा था "**एक ओंकार सतनाम**" वह एक है, ओंकार याने चैतन्य स्वरूप है, सतनाम याने सत्य है, उसके अलावा किसी रूप की बात करें वह झूठ है, हम कहते हैं यह किताब है तो किताब नाम झूठ है यह सचमुच में चैतन्य है यही सत्य है। किताब ही नहीं एक रेत के कण के सत्य का अनुसंधान करो तो वह खोज भी चैतन्य तक ले जायेगी। प्रसंगवश यहाँ जान लें कि संसार जड़ और चेतन में विभक्त है, जहाँ चेतना है वह चेतन है और जहाँ चेतना का अभाव है वह जड़ है। लेकिन दोनों ही चैतन्य हैं क्योंकि दोनों का स्रोत एक ही है, जड़ और चेतन दोनों चैतन्य की ही

अभिव्यक्तियां हैं। शिवसूत्र की प्रथम घोषणा है "चैतन्यमात्मा" याने चैतन्य ही अंतिम सत्य है। किसी भी वस्तु का अनुसंधान करने पर वह खोज चैतन्य तक पहुँच जायेगी। सत्य वही है जो समय और अंतरिक्ष के साथ कभी न बदले, आपको मैं कहूँ कि आप कमल भैया हो, आप वल्लभ भैया हो तो यह बात झूठ है, जो रूप है वह सत्य नहीं है, वह नाम भी सत्य नहीं है। प्रत्येक नाम और प्रत्येक रूप का अंतिम सत्य शिव है इसलिए वह पूर्ण सत्य है जो हम सबका सत्य है, जो हर वस्तु का और हर बात का, हर विचार का, अन्तरिक्ष का, भुवन का सत्य है, जो हर काल का हर स्थान का सत्य है, उसी सत्य का नाम है शिव। इसलिए वही है सतनाम शेष सारे नाम असत्य हैं। एक ओंकार सतनाम **करता पुरख**, सृष्टि निर्माण से ले कर सृष्टि के समस्त कार्य का वही कर्ता है इसलिए वह आदि कर्ता है। वह पुरख याने निरपेक्ष पूर्वज है, उसका कोई पूर्वज नहीं था। '**निर्भऊ**' उसको भय कैसा हो सकता है? क्योंकि भय के लिए हमको दो चाहिये। मुझे आपसे डर लग सकता है, आप मुझसे डर सकते हो लेकिन जब दो हैं ही नहीं, वह अकेला ही है तो डर का कोई प्रश्न नहीं। '**निर्वैर**', उसकी शत्रुता भी किसी से नहीं हो सकती क्योंकि शत्रुता के लिए भी तो दो चाहिए। **अकाल मूरति**, समयहीन अस्तित्व, उसका अस्तित्व समय से परे था इसलिए अंतरिक्ष से भी परे था इसीलिये वह सर्वव्यापी है। समय के साथ उसका अस्तित्व शुरू नहीं हुआ। हमें समय ने जन्म दिया है, हम कहते हैं "मैं १९५६ मे पैदा हुआ और आप १९९९ में पैदा हुए" लेकिन वह

अकाल है, क्योंकि समय को उसने जन्म दिया। वह समय से परे है इसलिये उसे अकाल कहते हैं। '**अजुनी सैभं गुरु परसादी**', वह अजन्मा स्वयंभू है जो गुरुदेव की कृपा से ही जाना जा सकता है। अब हम इतना तो अच्छी तरह समझते हैं और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी जानते हैं कि बिना चेतना के किसी घटना का अस्तित्व हो ही नहीं सकता क्योंकि चेतना मूल तत्त्व है। मैं बोल रहा हूँ, लेकिन इस वाणी का स्रोत क्या है? बोलने की प्रेरणा कौन दे रहा है? यह प्रेरणा जीवचेतना दे रही है जिसको सारे जीव 'मैं' के रूप में जानते हैं। जीवचेतना का स्वरूप वही है जो शिव का स्वरूप है, जो शिव के गुण हैं वे ही गुण हमारी स्वयं की चेतना के हैं। यहाँ बोलने वाली भी शिवचेतना है और सुनने वाली भी शिवचेतना ही है। हमारी जो चेतना है जिसको हम 'मैं' कहते हैं उस चेतना का स्वरूप है प्रकाश-विमर्श रूप, काश्मीर शैव दर्शन कहता है कि **शिवस्वरूप के दो पहलू हैं प्रकाश और विमर्श**। प्रकाश का मतलब होता है अस्तित्व, हम कहते हैं "किताब प्रकाशित हो गयी" याने अस्तित्व में आ गयी। जो अब तक इस दुनिया में थी ही नहीं अब अस्तित्व में आ गयी, प्रकाशित हो गयी। प्रकाशित होने का मतलब होता है सांसारिक अस्तित्व में आना, अभिव्यक्त होना। इस अभिव्यक्ति का स्रोत क्या है? शिव न केवल समस्त अभिव्यक्ति का स्रोत है वरन वह स्वयं ही समस्त भिन्नताओं में अभिव्यक्त होता है। सचमुच में जो कुछ भी है वह अस्तित्व से जुड़ा है और अस्तित्व का नाम ही परमेश्वर है।

अस्तित्व से अलग परमेश्वर की कोई व्याख्या नहीं हो सकती। अगर कोई वस्तु अस्तित्व में है मतलब ईश्वर है क्योंकि अस्तित्व का नाम ही ईश्वर है। अतः प्रकाश का मतलब है अस्तित्व और विमर्श याने अपने आपको जानना, स्वयं की शक्ति को पहचानना।

विमर्श ही शक्ति है

विमर्श चेतना का अभिलक्षण है स्वयं को जानना ही विमर्श है। चेतन जीव ही विमर्श कर सकता है। मैं अपने आपको जानता हूँ कि मेरा नाम मोहनलाल है, मेरी उम्र क्या है, मैं कहाँ रहता हूँ, मैं कहाँ बैठा हूँ, मैं क्या कर रहा हूँ, मेरे कौन अपने हैं, कौन पराये हैं, इसके बारे में मेरी अपनी एक धारणा है, इसलिए मेरी अंतर्दृष्टि मुझे अपना परिचय करवाती है, इसको कहते हैं विमर्श। समय और अंतरिक्ष में स्वयं की स्थिति को समझना जीव के विमर्श पर निर्भर है जिसे अनुस्थापन (orientation) कहते हैं। मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, क्या बोल रहा हूँ, क्या बोलना उचित है, क्या बोलना अनुचित है कौन सा व्यवहार मेरे योग्य है यह सब कुछ मेरा सोचने का विचारने का जो तरीका है, वह विमर्श पर आधारित है। मैं इस विमर्श के द्वारा अपनी चेतना को प्रकाशित करता हूँ क्योंकि विमर्श के द्वारा ही मेरी चेतना प्रकाशित होती है, विमर्श चेतना की शक्ति है। विमर्श समस्त जीव जगत में व्याप्त है। **माया के क्षेत्र में हमारा विमर्श हमारे शरीर से जुड़ा होता है।** याने स्वयं के बारे में हमारी जानकारी विकृत होती है। कला, विद्या, राग,

काल और नियति के द्वारा यह विकृति संपन्न होती है। माया के ये पांच आवरण कंचुक कहलाते है जिनके बारे मे हम आगे समझेंगे। हमारी अहंता याने स्वयं की पहचान विमर्श से ही आती है। हमारे विमर्श अलग अलग क्यों हैं? आपका विमर्श मेरे विमर्श से भिन्न क्यों है, आप अपने आपको वल्लभ बोलते हो, मैं मोहन क्यों बोलता हूँ? इसके पीछे कारण यह है कि आपके मेरे विमर्श के बीच में एक माया का पर्दा आ गया है जिसने उन विमर्शों को अलग अलग कर दिया। जैसे किसी स्रोत से जल को हमने एक बड़े पात्र में लिया और ढेर सारे लोटों में भर दिया। अब हर लोटे का अपना एक नाम रख दिया। लोटे आपस में झगड़ने लगे कि मेरा जल उत्तम है बिना इस बात को जाने कि हम सब एक ही जल से भरे गये हैं। हमें हमारा विमर्श अलग महसूस होता है लेकिन हम सबका विमर्श एक ही है और वह विमर्श है सर्वोत्तम विमर्श, यह तब होता है जब हमारी दृष्टि अपने स्रोत पर होती है और हम अपने सत्य स्वरूप को जानते हैं। तब समझ में आता है 'सब अभिन्न रूप से एक हैं', 'सारा संसार मैं हूँ', 'सारा ब्रह्माण्ड मैं हूँ' और 'यह मेरी ही चेतना का विकास है'। यही माया से परे शुद्ध अहंता है जिसे विश्वाहंता कहते हैं। इसलिए शिव के दो पहलू स्पष्ट हैं, **वह सब कुछ प्रकाशित करता है** और **उसे इस बात का ज्ञान है, वह इस बात के प्रति जागरूक है कि वह क्या कर रहा है**, ये दो पहलू ही प्रकाश और विमर्श हैं। इन दो पहलुओं को ही शिव-शक्ति कहते हैं, इन्हें कभी अलग नहीं किया जा सकता।

जड़ एवं चेतन का भेद

यह विद्युत का प्रकाश भी सबको प्रकाशित कर रहा है लेकिन वह जड़ है वह नहीं जानता कि वह किसको प्रकाशित कर रहा है। दूसरी बात जो जड़ पदार्थ हैं वे प्रकृति के नियमों से बंधे हैं, लेकिन चेतना प्रकृति के नियम बनाती है। दोनों बातों में बड़ा अंतर है। **जड़ जगत नियमों का पालन करता है और चेतन जगत नियमों को बनाता है**। अध्यात्म के नियम, भौतिक शास्त्र के नियम, गणित के नियम, जीव शास्त्र के नियम ये सब नियम शिव ने बनाये हैं। ये नियम अगर सांसारिक अस्तित्व में हैं तो निश्चित इनका नियामक कोई तो है जिसने नियमों को बनाया है। जब हम कोई रचना देखते हैं तो रचनाकार है ही। अगर कोई पुस्तक है तो कोई न कोई उसका लेखक है ही। अगर किसी दस्तावेज पर मेरे हस्ताक्षर हैं तो इस दस्तावेज पर मेरी सहमति का यह प्रमाण है। अगर संसार है तो संसार का रचयिता भी है। इस तरह यह बात स्वप्रमाणित है। विज्ञान लम्बे काल से संसार को जड़ स्वरूप में देखने का आदी हो गया था, जड़ से ही चेतन की उत्पत्ति मानता आया था। पिछली एक सदी में ये विचार चेतना की ओर उन्मुख होने लगे हैं क्योंकि विज्ञान के कई प्रयोगों में चेतना का स्वातंत्र्य प्रकट होने लगा। जैसे सन १८०१ में किया गया डबल स्लिट प्रयोग और बाद में इसका सूक्ष्म कणों द्वारा किया गया रूपांतरित संस्करण जिसकी पारंपरिक विज्ञान द्वारा व्याख्या करना संभव नहीं। यहीं से वैज्ञानिकों को नयी दिशा में सोचने को बाध्य होना पड़ा।

संसार के खेल में भिन्नता आवश्यक

अगर हम अब यह देखें कि संसार में इतनी भिन्नता क्यों? जब संसार एक ही इकाई है, एक ही स्रोत है तो मैं अलग, तुम अलग, यह मेरा अपना, वो पराया, ये अच्छा, ये बुरा, इस तरह की भिन्नतायें संसार में क्यों छाई हुई हैं? कोई सुखी है, कोई दुखी है, कोई अमीर है, कोई गरीब है तो इस तरह समस्त संसार हमें भिन्नता भरा दिखाई दे रहा है, उस **भिन्नता के पीछे क्या कारण है**?

शिव ने जब अपने आपसे इस संसार को एक खेल के रूप में निर्मित किया तो पूर्ण शांत चेतन स्वरूप शिव का झुकाव किधर हो सकता है? जिधर झुके उधर वह स्वयं ही तो है। आपका झुकाव मेरी ओर हो सकता है, मेरा झुकाव आपकी ओर हो सकता है लेकिन शिव बिना किसी पूर्वाग्रह के है। वह जानता है 'सब कुछ मैं हूँ, मेरे सिवाय कुछ भी नहीं है' फिर भिन्नता क्यों? आओ इस भिन्नता का कारण समझते हैं। आरम्भ में इस खेल में उसे मजा नहीं आया क्योंकि भगवान् द्वारा निर्मित कण कण जानता था कि मैं शिव हूँ। उसने जो कुछ बनाया स्वयं का विकास करता चला गया। उसने एक पत्थर बनाया तो वह पत्थर भी जानता था कि वह शिव है, जीव बनाया तो उसमें भी कोई गतिविधि नहीं हुई क्योंकि प्रत्येक निर्मित जीव जानता था कि वह शिव है तो उसे कुछ करने की क्या आवश्यकता? मेरी इस अंगुली को चिंता नहीं है कि उसकी रक्षा कौन करेगा क्योंकि रक्षा करने वाला इस

शरीर में बैठा है, उसका अपना कोई स्वतंत्र कर्त्तव्य नहीं बस वह तो कठपुतली की तरह इस शरीर के मालिक की आज्ञा मानती रहती है, इसलिए इस अंगुली की अपनी कोई अलग पहचान नहीं है, न ही यह अंगुली अलग तरीके से कुछ सोच सकती है कि मैं कल क्या करूँगी? क्योंकि यह मेरे अस्तित्व का हिस्सा है। इस तरह जब पूरा ब्रह्माण्ड बना तो शिव के अस्तित्व का हिस्सा था, उसमें हर कोई शांत चुपचाप बैठा था। सबको मालूम था "मैं शिव हूँ"। हर कण ज्ञानी था, उस ज्ञान में किसी तरह की कोई रुकावट नहीं थी, कमी नहीं थी। जिस स्पंदन से, जिस शक्ति से शिव ने संसार को बनाया उस शक्ति का नाम है स्वातंत्र्य शक्ति। वह परम स्वतंत्र है, उस शक्ति को रोकने वाली कोई दूसरी शक्ति है ही नहीं। जब शिव के सिवाय कोई था ही नहीं तो दूसरी शक्ति कहाँ से आयेगी। उस शक्ति का दूसरा नाम है 'अनिरुद्ध' जिस शक्ति को रोकने वाली कोई दूसरी शक्ति है ही नहीं, वह बिना रुकावट के बहने वाली शक्ति है इसलिए उसका नाम है अनिरुद्ध। एक और नाम है 'स्वरसोदित' जो अपने ही रस से याने अपने ही मूल से पैदा हुई है। संसार की समस्त शक्तियां स्वातंत्र्य शक्ति से संचालित हैं तो स्वातंत्र्य शक्ति से बड़ी हो ही नहीं सकती। शक्ति ही संसार के रूप में अभिव्यक्त हुई, यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि किसी भी वस्तु के अंतिम सत्य को हम खोजें तो शक्ति से सिवा कुछ भी नहीं मिलेगा, पदार्थ नाम की कोई चीज नहीं बचेगी, अंतिम रूप से वह वस्तु शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जायेगी। इसके कई उदाहरण हैं जैसे परमाणु

विखण्डन जिसमें पदार्थ शक्ति में परिवर्तित हो जाता है, परमाणु बम, परमाणु विद्युत् गृह आदि के पीछे यही क्रिया ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार है। याने समस्त पदार्थ ऊर्जा का ही रूप हैं।

माया की आवश्यकता

जब शिव ने संसार का निर्माण किया तो उस निर्माण में उसे आनंद नहीं आया क्योंकि शिव चाहता था कुछ खेल। आपमें मुझमें कोई झगड़ा नहीं फिर भी जब हम ताश खेलते हैं तो एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। खेल में विरोध करना जरूरी है। जब हम विरोधी नहीं होंगे तो फिर आपस में खेलेंगे कैसे? आज दो दोस्त हैं, हॉकी की अलग अलग टीमों में होंगे तो एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी हो ही जायेंगे, एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करेंगे, उसी में खेल का मजा है। शिव ने जब संसार बनाया तो उस खेल में मजा तब तक नहीं आया जब तक हम अलग अलग नहीं हुए, सारी सृष्टि अगर एक ही टीम होगी तो खेलेंगे किससे? इसलिए उसने अलग अलग लोग बनाये जो आपस में खेलें, लड़ें, प्रेम करें, लेन-देन करें, कुछ हिसाब पूरा हो, कुछ बाकी रहे। जब भिन्नता बनाना शुरू की तो इस भिन्नता के बनाने के क्रम में उसने 'माया' को अवतरित किया। **माया और कुछ भी नहीं वरन उसकी अपनी ही शक्ति है जिसके द्वारा उसने अपने आपको सीमित किया जाना स्वीकार किया।** हम कई मंदिरों में देखते हैं शिवजी लेटे हैं ऊपर से माताजी पैर रखकर खड़ी हैं, हाथ में खड्ग है क्योंकि शिव ने चाहा मेरे

अस्तित्व को सीमित कर दो, मेरा अवतरण कर दो। ऐसा करने के लिए **उसकी स्वयं की शक्ति ही माया बन जाती है** जिससे आवृत्त हो कर शिव अपने अस्तित्व में नीचे उतर कर जीव के स्तर पर आ जाते हैं और माया शिव को जीव बनाये रखती है। **किसी और शक्ति की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती जो शिव को सीमित कर दे।** शिव पर शक्ति, याने माया, एक आवरण डाल देती है जिस आवरण के द्वारा वह जीव बन कर अपने आपको दीन-हीन, गरीब, छोटा, असहाय, अणु महसूस करने लगता है। हम भी वही करते हैं, मैं बहुत गरीब हूँ, छोटा सा दीन-हीन हूँ, पापी हूँ मेरी क्या हैसियत? मेरी समस्त शक्तियाँ सीमित हैं। जो असीम शक्तिशाली था उसकी समस्त शक्तियाँ सीमित हो जाती हैं। इस तरह भिन्नता उत्पन्न करने के लिए माया अनिवार्य है।

माया कैसे काम करती है?

स्वयं शिव की शक्ति को सीमित करने के लिए शिव ने माया को अधिकृत किया तो माया ने पांच कंचुक बनाये। पांच कंचुकों का मतलब होता है पांच तरह के बंधन और उन बन्धनों के बीच में शिव जीव बन गया। वैसे तो कण कण शिव है लेकिन शिव को जीव रूप में सीमितता का भ्रम उत्पन्न करने के लिए माया ने पांच तरह के बंधन पैदा किये जिन्हें कंचुक कहते हैं। सबसे पहला बंधन है कला, दूसरा विद्या, तीसरा राग, चौथा काल और पांचवा नियति ये पांच बंधन हैं।

कला नाम का जो बंधन है उसके द्वारा माया ने प्रत्येक जीव की कार्य करने की शक्ति को सीमित कर दिया। शिव चूँकि उसकी शक्ति स्वातंत्र्य शक्ति थी इसलिए उसके लिए कुछ भी करना असंभव नहीं था, गणित के नियम उसने बनाये। अब हम कहें कि पाई का मान २२/७ क्यों है? अगर वह २३/७ बनाता तो भी बना सकता था, उसे मात्र अंतरिक्ष के आयामों में कुछ परिवर्तन करना पड़ता उसकी स्वातंत्र्य शक्ति इसके लिए पूर्ण रूप से सक्षम थी, अब हम कितना भी दिमाग लगायें कि पाई का मान २२/७ ही क्यों? लेकिन यह उसकी इच्छा। स्वातंत्र्य शक्ति पूर्ण स्वतंत्र है, उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। उसने कला के द्वारा कार्य करने की शक्ति को सीमित कर दिया। अब हम कार्य तो कर सकते हैं लेकिन थोड़ा सा, यहाँ एक सीमा आ गयी। उसने यह विश्व बनाया हम भी बना सकते हैं लेकिन एकाध मकान बना सकते है, हम एक पत्थर को भी सीमित दूरी तक ही फेंक सकते हैं क्योंकि हमारी अपनी सीमा है। इसलिए हर कार्य को करने की हमारी शक्ति का सीमांकन हो गया। इस सीमांकन करने वाली शक्ति का नाम है कला। दूसरा कंचुक है **विद्या**। यह अशुद्ध विद्या है जिसके कारण हमारी जानने की क्षमता सीमित हो जाती है। भूतकाल की एक धुंधली होती सी स्मृति और वर्तमान में हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा लाई गई जानकारियों के सिवा हमारा ज्ञान शून्य है। हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों के बंधन में कैद हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ संसार के सत्य का एक छोटा सा अंश ही जानने में सक्षम हैं और हम सांसारिक रूप से उसी सीमित

जानकारी पर निर्भर हैं। हम विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के समुद्र के बीच रहते हैं लेकिन हमारी समस्त इन्द्रियों के द्वारा भी हम इस विस्तृत स्पेक्ट्रम का अत्यंत छोटा सा हिस्सा ही पकड़ पाते हैं। माया का तीसरा कंचुक है **राग**, राग के द्वारा माया ने अतृप्ति पैदा की। शिव आप्तकाम है याने वह अपने आप में ही संतुष्ट है, क्यों? जब उसके सिवाय कुछ है ही नहीं तो वह कामना किसकी करेगा? ब्रह्माण्ड वह स्वयं ही है तो उसके लिए राग कहीं हो ही नहीं सकता, हमारा राग होता है धन चाहिये, स्त्री चाहिये, बच्चे चाहिये, नौकरी चाहिये उस 'चाहिये' का कहीं अंत नहीं। यह एक प्रकार का ऐसा भ्रम है जो कभी समाप्त होता ही नहीं, जब तक हम उस शक्ति के अधीन हैं तब तक भ्रम समाप्त हो ही नहीं सकता और लगातार हम रागी बने रहते हैं। हमारी कामनायें कभी भी समाप्त नहीं होतीं, तभी महात्मा बुद्ध ने कहा था "वासना दुष्पूर है"। राग ने हमारी वासना को दुष्पूर बना दिया। कितना भी मिल जाए तृप्ति कभी भी नहीं होती। तृप्ति आती भी है तो क्षण भर मे पुनः कामना जाग उठती है। अगला कंचुक है **काल**। हम काल के द्वारा बंधे हुए हैं। हम भूतकाल में नहीं जा सकते, एक विशेष गति से भविष्य की ओर ही जा सकते हैं। सोचो अगर परसों कोई गलती की थी उसको सुधार लें, तो नहीं सुधार सकते क्योंकि हम भूतकाल में नहीं जा सकते और वर्तमान से बंधे हुए हैं। हम महाकाल थे, काल के ग्रास बन गये, काल के बंधक बन गये, हम महाकाल थे क्योंकि काल को जन्म हमने दिया, हमारी ही चेतना है जिसने इस

ब्रह्माण्ड के जन्म को होते देखा, समय के जन्म को देखा। न केवल जन्म होते देखा वरन जन्म दिया, वही चेतना माया के चौथे कंचुक काल के कारण काल के अधीन हो गयी! अंतिम पाँचवा कंचुक है **नियति**। नियति के द्वारा आप एक आकार से बांध दिए गये या अन्तरिक्ष में बांध दिए गये, आप अगर यहाँ पर हो तो इंदौर में नहीं हो सकते, इंदौर में हो तो महेश्वर में नहीं हो सकते, क्योंकि आप एक आकार में बांध दिए गये। आप समझते हो मैं बस इस चमड़ी के अन्दर हूँ, इस शरीर के अन्दर हूँ, शरीर ही मेरी पहचान है और इस शरीर के बाहर मैं नहीं हूँ। हमें भ्रम हैं कि "हम इस सीमित आकार के अन्दर बंधे हैं, आकार के बाहर हमारी कोई सत्ता नहीं है"। इसके अलावा जो सांसारिक कार्य कारण रिश्ता है वह भी नियति का परिणाम है। सम्पूर्ण अस्तित्व का मूल एवं एकमात्र कारण सार्वभौम चेतना है लेकिन हमें वृक्ष का कारण बीज और बीज का कारण वृक्ष प्रतीत होता है, मुर्गी का कारण अंडा और अंडे का कारण मुर्गी दिखता है। यही कारण है कि हम इस भूल भुल्लैया में पड़ जाते हैं कि बीज पहले आया या वृक्ष, मूल कारण हमारी आँखों से ओझल रहता है। कला के द्वारा करने की क्षमता सीमित कर दी गयी, विद्या के द्वारा जानने की क्षमता सीमित हो गयी, राग के द्वारा हमको सतत अतृप्त बना दिया गया, काल के द्वारा हम समय से बांध दिए गये और नियति के द्वारा हम अंतरिक्ष और कार्य कारण रिश्ते में बांध दिए गये। ऐसे पांच कंचुकों द्वारा शिव जीव बन गया। फिर हम क्या हैं? हम शिव के छोटे संस्करण

हैं। अगर एक पात्र में समुद्र से जल ले आओ और उसको एक बोतल में भर दो फिर अगर कहें कि यह समुद्र है, तो हम हंसेंगे ये समुद्र है? ये तो इतनी सी बोतल है। गुरुदेव अपने शिष्य की ओर देख कर कहेंगे यह शिव है तो हम कहेंगे नहीं नहीं ये तो कमल भैया हैं, शिव कैसे हो सकते हैं? हम ऐसा क्यों सोचते हैं? क्योंकि हम उस सीमित संस्करण के आदी हो गये हैं और इसका आदी करने में जिम्मेदारी किसकी है? उस माया की जिसने पांच कंचुक बनाये और माया का मतलब होता है भ्रम पैदा करने वाली शक्ति। इन पांच कंचुकों के द्वारा जीव भ्रमित हो जाता है कि यही सत्य है जो कुछ मुझे दिख रहा है, जो कुछ मैं महसूस कर रहा हूँ वही सत्य है। परम सत्य उससे ओझल रहता है। उसी भ्रम की वजह से यह संसार चल रहा है क्योंकि संसार की दौड़ केंद्र से विपरीत दिशा में है, यही अविद्या है। पूरा संसार एक चक्र की तरह है, बीच में चक्रेश्वर या शिव स्थित है और जिससे निकलने वाली किरणों की तरह यह संसार है जो परिधि की तरफ दौड़ रहा है और लगातार विकसित हो रहा है। इस विकास की यात्रा में जो लोग इसके साथ चलते हैं उनके खूब सारे मित्र एकत्रित हो जाते हैं क्योंकि वे भी उधर ही जा रहे हैं, परिधियाँ लक्ष्य का भ्रम उत्पन्न करती हैं और उस परिधि पर पहुँचते पहुँचते उनको और नई परिधियाँ दिखाई देती हैं, नए लक्ष्य निर्धारित हो जाते हैं। अब उन परिधियों की दौड़ आरम्भ हो जाती हैं, उन परिधियों की दौड़ लगाते लगाते क्षितिज पर और नई परिधियाँ प्रकट हो जाती हैं। यह दुष्चक्र चलता ही रहता है। यह

अंतहीन दौड़ कभी लक्ष्य तक न पहुँचने वाली मरीचिका है। केंद्र एक ही है, बिंदु स्वरूप है, चक्र बड़ा, और बड़ा, और बड़ा होता ही चला जाता है। इसी को कहते हैं संसार की दौड़। यह कभी समाप्त नहीं होती। इस दौड़ में जब हम परिधि की दिशा में दौड़ते हुए अपना शरीर त्याग कर देते हैं तो भ्रमित लक्ष्य की वासना नये शरीर को ग्रहण करने के लिए विवश करती है और यह दौड़ पुनःआरम्भ हो जाती है। हम अगले जन्मों में फिर इस परिधि की दिशा में उन्मुख हो कर जन्म लेते हैं, और दौड़ चलती ही जाती है। माया ऐसे ही काम करती है।

इसमें कोई विरला होता है जो पलट जाता है, जो स्वयं की जड़ को खोजना चाहता है, जानना चाहता है मैं कहाँ से आया हूँ? यह दौड़ कहाँ से आरम्भ हुई थी? मैं कौन हूँ? मेरा क्या अस्तित्व है? संसार का सत्य क्या है? हम जिसे ईश्वर कहते हैं वह क्या है? क्या ईश्वर किसी आकार में बंधा हुआ है? किसी मंदिर में छुपा हुआ है? किसी तीर्थ में जाकर छिप गया है? अंतरात्मा बोलती है ऐसा कुछ सत्य नहीं, सत्य कुछ और ही है और सत्य की खोज में जो चलता है उस आध्यात्मिक व्यक्ति की दिशा परिधि से केंद्र की ओर हो जाती है। वह केंद्र की तरफ यात्रा करने लगता है तब हास्य का पात्र बन जाता है, उपेक्षा का पात्र बनता है, मित्रों के विरोध का पात्र बनता है, उसे विरोधों का सामना करना पड़ता है क्योंकि उसकी दिशा केंद्र की तरफ है, संसार से उलट! "अरे काम धंधे का समय है सत्संग में जाकर बैठ गया, कुछ और काम करता तो शायद दो पैसे मिल जाते, क्या मिल रहा है वहाँ पर"?

"जबर्दस्ती के गप्पे लगाकर आ जायेगा"। संसार की दौड़ में बहुत ऊर्जा लगाना पड़ती है लेकिन **ईश्वर की ओर लौटना तो मंगल विधान है** जहाँ प्रयास से अधिक समर्पण जरूरी है। इस मंगल विधान को विज्ञान की दृष्टि से समझने का प्रयास करते हैं।

भौतिक शास्त्र का आध्यात्मिक सिद्धांत

भौतिक विज्ञान में एक प्रसिद्ध नियम है जिसे ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम कहते हैं। इस नियम के अनुसार रेन्डमनेस अथवा बेतरतीबी समय के साथ सदैव बढ़ती ही जाती है। बेतरतीबी का मतलब अभिन्नता है विज्ञान में इसे एन्ट्रापी कहते हैं। उदाहरण के लिए मिट्टी जब घड़ा बन जाती है तो अभिन्नता या रेन्डमनेस घट जाती है (क्योंकि अब मिट्टी के दो भिन्न रूप हो गए, मिट्टी और घड़ा, भिन्नता बढ़ गयी = एन्ट्रापी घट गयी जिसके लिए बहुत ऊर्जा की आवश्यकता होती है और प्रयास की आवश्यकता भी होती है।) और जब घड़ा पुनः मिट्टी बन जाता है तो अभिन्नता पुनर्स्थापित हो जाती है, एन्ट्रापी बढ़ जाती है, (क्योंकि अब मिट्टी का एक ही रूप है) यह स्वतः होता है क्योंकि सृष्टि की समस्त रचनाओं की नैसर्गिक दिशा अभिन्नता याने शिव की ओर है। अगर हम समस्त सांसारिक प्रयास त्याग दें तो स्वतः शिव तक पहुँच जायेंगे, इसी को समर्पण कहते हैं, यही मंगल विधान है। इसका तात्पर्य है कि यह भिन्नता भरा संसार जिसमें विभिन्न संरचनाएँ हैं, जिसे हम एक संगठित संसार कह सकते

हैं, असंगठित मूल स्वरूप में लौटने को उत्सुक रहता है। इसकी प्रत्येक रचना को रचने में या संगठित करने में बहुत ऊर्जा की आवश्यकता होती है लेकिन रचना के तुरंत बाद ही ऊर्जा का बहाव इसे अभिन्न मूल स्वरूप में लौटाने लगता है। इसका कारण है कि अभिन्नता स्थाई है जिस ओर सब कुछ लौट रहा है, भिन्नता या रचित संसार में रचना के रूप लेते समय ऐसी ऊर्जा प्रवेश कर जाती है जो उसे सतत मूल स्वरूप में लौटती है। इसे ऐसे समझ सकते हैं कि हम जन्म लेते ही मृत्यु की ओर बढ़ने लगते हैं, मकान बनते ही उसका क्षरण आरम्भ हो जाता है, कॉफ़ी बनते ही ठंडी होना शुरू हो जाती है, घड़ा बनते ही मिट्टी बनना आरम्भ हो जाता है। यह कुर्सी जिस पर आप बैठे हो वह भी टूटने की दिशा में बढ़ रही है। इस शरीर का भी क्षरण हो रहा है, क्योंकि अंततः वापस शिव में मिल जाना है। गर्मी के दिनों में एक कमरे के वातानुकूलन में बहुत ऊर्जा की जरूरत होती है क्योंकि यहाँ हम भिन्नता को बढ़ा रहे हैं, बाहर बहुत गर्म है और भीतर हमें ठण्ड पैदा करना है। जबकि इसे पुनः बाहर की तरह गर्म करने में कोई श्रम नहीं होता क्योंकि यहाँ भिन्नता समाप्त हो रही है।

अद्वैत का आनंद

जो आनंद अद्वैत के बोध से मिलता है उस आनंद की शब्दों में व्याख्या करना संभव नहीं है। आनंद और खुशी में जमीन आसमान का अंतर है। खुशी एक द्वैतवादी अनुभव है। खुशी को दुःख में बदलते

देर नहीं लगती अगर आपकी लॉटरी खुल जाए, दस लाख की, तो बहुत खुशी होगी लेकिन वे दस लाख रूपये चोरी हो जाएँ तो वही खुशी दुःख में बदल जाएगी, उसको देर नहीं लगेगी। लेकिन आनंद हमारा स्वभाव है जिसकी कोई चोरी नहीं कर सकता, कोई इसमे सेंध नहीं लगा सकता कोई उसमें से चम्मच भर मांगेगा तो हम उसको कहेंगे मटकी भर ले ले, आनंद उससे और बढ़ेगा घटेगा नहीं! आनंदपूर्ण व्यक्ति के पास जो भी आयेगा आनंद से भर जायेगा। इसलिए उपनिषद् कहते है "ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते"॥ आनंद सदैव पूर्ण है उसमें से कितना भी बाँट दो वह कभी कम नहीं होता और जिसको मिलता है उसको भी पूर्ण मिलता है। **पूर्ण की परिभाषा ही यह है कि वह कभी अपूर्ण नहीं होता यही निरपेक्ष पूर्णता है।** आनंद हमारा स्वभाव है, इसका कोई विलोम नहीं है, इसका कोई विलोम हो ही नहीं सकता, आनंद की कोई सीमा नहीं है जितना बाँटो उतना और बड़ जाता है। इसी आनंद का नाम अध्यात्म है।

हमारे जीवन की दिशा

संसार की दिशा में चलने वाले अपने साथियों को आसानी से खोज लेते हैं, अभी आप कहो कि मुझे और धन कमाना है तो तुरंत व्यापार के साथी मिल जायेंगे, नई नौकरी तलाश करना है तो खूब सारे मित्र साथ देंगे। लेकिन आप चाहेंगे कि मैं अपनी जड़ों को खोजूँ, मेरे सत्य

को खोजूँ, परमेश्वर को खोजूँ, मेरे उस आनंद को खोजूँ कहाँ खो गया, तो बोलेंगे ये तो पागल है। 'अभी हमको तो काम धंधा करने दे' और तुम अकेले पड़ जाओगे। जब कोई केंद्र की तरफ दिशा करता है तो विरले ही साथ देते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं सहस्रों में एक विरला ही मेरी ओर आता है। वे आह्वान करते हैं "**सर्वधर्म परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**", "सभी धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आ जा"। सब धर्मों को छोड़ने का मतलब है अपने समस्त मोहजन्य, कामनापरक कर्तव्यों को छोड़ परमेश्वर से प्रेम करना। हमारी अपनी लौकिक पहचान बड़ी बाधा है। सांसारिक परिचय कि मैं इस कुल से हूँ, इतना विद्वान हूँ, व्यापारी हूँ, चिकित्सक हूँ, समाजसेवक हूँ या परोपकारी हूँ ये सब हमें वास्तविक परिचय से दूर कर देते हैं। भगवान् कृष्ण का आशय है "भूल जा कि संसार में तेरी क्या पहचान है तू अपनी वास्तविक पहचान तब पायेगा जब मेरी ओर आयेगा"। अपनी सार्वभौम पहचान पाने के लिए मनुष्य को अपनी इन छोटी-छोटी पहचानों को त्यागना जरूरी है। यहाँ कृष्ण कोई देवता नहीं वरन विश्व चैतन्य हैं। हम कृष्ण की ओर नहीं जा रहे, हम अपनी इच्छा से परिधियों में उलझे हुए हैं। हमने अपने अपने घरौंदे बना लिए और उन्हीं को पूज रहे हैं, ईश्वर की दिशा में जाने की हमारी कमिटमेंट या प्रतिबद्धता कमजोर है। कृष्ण को वृन्दावन में देखते हैं और शेष संसार में नहीं देखते। हम तो बालकृष्ण को पूजने वाले सुदर्शन चक्रधारी को ही नकार देते हैं! वाराणसी में शिव को देखने वाले वाराणसी के बाहर

उसे नहीं देखते। एक रूप की पूजा करते करते हम परमेश्वर की सर्वव्यापकता को भूल जाते हैं। हमने अपने छोटे छोटे घरौंदे बना लिए और उन घरौंदों को परिधि में स्थापित कर दिया है! कोई रूप में अटक जाता है कोई स्थान में और इस तरह हम ईश्वर की सीमित अवधारणा में भ्रमित हो जाते हैं। यह भी माया जनित भ्रम है और हमारी वास्तविक खोज जो ईश्वर की थी वह रुक गयी, हमारी प्रतिबद्धता कमजोर हो गयी। अगर हम पूर्ण प्रतिबद्धता से अपने सत्य की खोज करें तो हम अपने स्वयं के केंद्र तक आ सकते हैं लेकिन प्रतिबद्धता के बगैर नहीं हो सकता, दृढ़ निश्चय चाहिए कि सत्य से कम कहीं नहीं रुकूंगा, अगर मैं पलटा हूँ परिधि से तो सीधे सीधे केंद्र तक ही आऊंगा जहाँ पर मेरी यात्रा समाप्त होगी।

कहाँ खोजें उसे?

सत्य कहीं दूर नहीं है, हमारे भीतर ही है, हमको बाहर कहीं खोजने जाना नहीं, लेकिन हम उसको बाहर खोजते हैं, स्वर्ग में खोजते हैं, मंदिर में खोजते हैं, तीर्थों में खोजते हैं, नदियों में खोजते हैं, गुफाओं में खोजते हैं। हमको सत्य नहीं मिल पाता क्योंकि हमनें अपने अपने घरौंदे बना लिए और उनमें उसे ढूंढते है, अक्सर तो इन घरौंदों को ही लक्ष्य मान लेते हैं। हम पूर्वाग्रही हो जाते हैं जो हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है। आरंभिक रूप से ये घरौंदे बनाना भी जरूरी है। जब एक बच्चे को बताना होता है कि आप संसार में भाषा, गणित, विज्ञान

सीख रहे हो तो इन सबसे हटकर कुछ और भी है जो जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह है परमेश्वर, तो आरंभिक रूप से परमेश्वर को रूप देना जरूरी है। इसी तरह आप बच्चों को परमेश्वर का परिचय दे सकते हैं। लेकिन दिक्कत यह है कि उन सीमित रूपों से हम बड़े भी बंधे रहते हैं, हम स्वयं भी उस छोटे से दायरे के बाहर नहीं आ पाते। एक रूप को मान्यता देते देते हमारे दायरे इतने संकीर्ण हो जाते हैं कि अन्य रूपों से ही प्रतिद्वंदिता करने लगते हैं। धर्म में हमें चरम स्तर की असहिष्णुता देखने को मिलती है। यही कारण है कि प्रतिबद्धता सीमित हो जाती है, सत्य की खोज रुक जाती है। हमको ये जो संसार की लकदक झांकी दिखाई दे रही है, चीड़ियाँ चहक रही हैं, मोटर का हार्न सुनाई दे रहा है, लोग चिल्ला रहे हैं, सड़क पर भाषण हो रहे हैं, नदियाँ कल कल बह रही हैं, सूरज तप रहा है, यह विहंगम दृष्य देखो ये सब शिव हैं और यह सारी हलचल शिव की शक्ति है। इसी को कहते हैं ईशावास्यम् इदं सर्वं.. यह सब कुछ परमेश्वर है। यह सारी झाँकी परमेश्वर की है, जो इन्द्रियों से अनुभव में आ रहा है और जो इस अनुभव से परे है वह सब भी ईश्वर है। इस सृष्टि को त्यागपूर्वक भोगो इस संसार के प्रति हृदय में एक त्याग की भावना होना चाहिए कि भोगूँ तो मैं सबकुछ लेकिन साथ ही साथ इस जागरूकता के साथ कि यह स्थाई नहीं है, मेरा अंतिम गंतव्य नहीं है, साथ ही हम किसी से अपनी तुलना न करें क्योंकि इस संसार में सभी अपने अपने कर्मों को भोग रहे हैं, हमारी दृष्टि ईश्वर पर हो। अध्यात्म में न तो आपको

कमण्डल उठाना है न जंगल में जाना है न किसी विशेष तरह के कपड़े पहनना है, न ही किसी विशेष तरह का चिन्ह अपने शरीर पर लगाना है। इन सब की कुछ जरूरत नहीं है। जैसे मैंने आज मिठाई खाई और प्रतिदिन ही मुझे मिठाई चाहिए तो यह मेरा मोह है, मोहग्रस्तता है, राग है। मिठाई मिल गयी तो खा ली, रूखा-सुखा मिल गया तो वो भी खा लिया और दोनों में ही आनंदित हूँ तब मैं विरक्त हूँ। मिठाई खाना पाप नहीं है न धनवान होना पाप है, न ही धन कमाना पाप है लेकिन उसके पीछे भागना पाप है उसके प्रति रागी होना पाप है। अगर हम रागी नहीं हैं तो उस भाग दौड़ में कोई समस्या नहीं है जो बाहर से दिखाई दे रही है, हम अन्दर से विरक्त हो सकते हैं। यह तो अंतर्यात्रा है। जहाँ हमारे हृदय में इर्ष्या हुई, जहाँ हमारे हृदय में घृणा हुई, हम भीतर से जल उठते हैं और फिर हम चाहते हैं कि इसके मकान से सुन्दर मकान मेरा होना चाहिए, इसकी कार से महंगी कार मेरी होना चाहिए और यह सब पाने के लिए हम परिधि की दौड़ शुरू कर देते हैं जिसका कहीं अंत नहीं है। हर परिधि पर आपको और नए प्रतिस्पर्धी दिखाई देंगे और हम उस प्रतिस्पर्धा के अंत में कभी पहुँच ही नहीं सकते इसलिए वह दिशा अंधी दौड़ है। उस दौड़ का कहीं अंत नहीं है, हर परिधि के बाहर नई परिधियाँ उपलब्ध हैं। उसे खोजना है तो समस्त सृष्टि से प्रेम करें, संसार की भिन्नता के बीच उस अभिन्न तत्त्व को देखे तब हमारी अंधी भागदौड़ समाप्त हो जाती है, असीम शांति मिलने लगती है। जिस हृदय में परमेश्वर के लिए प्रेम हो वहाँ मोह, घृणा, इर्ष्या,

प्रतिस्पर्धा, क्रोध या शत्रुता रह ही नहीं सकते और इसके बावजूद हम समस्त सांसारिक कर्तव्यों का, यहाँ तक कि युद्ध जैसे कर्त्तव्य का भी, निर्वाह सहजता से कर सकते हैं।

संसार शिव की कविता है

तो हमने पढ़ा पांच कंचुकों के बारे में जिनके द्वारा हम शिव से जीव बना दिये गये। अब हम इससे पूर्व की कथा समझते हैं। **शिव** ने जब संसार बनाने की इच्छा की तो उसके हृदय में पहला स्पंदन हुआ उसी स्पंदन का नाम है **शक्ति**। जब उसने अपना विमर्श किया, अपने आपको तौला और अपनी शक्ति को पहचाना कि मैं एक संसार का निर्माण कर सकता हूँ, उसके कुछ नियम बना सकता हूँ, एक खेल खेल सकता हूँ। जैसे आप अकेले बैठे हों और एकाएक विचार आया कि "मैं एक कविता लिख सकता हूँ", तो आप पहले मन में लिखोगे, फिर कागज पर लिखोगे और ठीक समझोगे तो उसे प्रकाशित कर दोगे। चित्रकार के मन में आया एक चित्र बनाने का, वह चित्र कहाँ बनायेगा? पहले अपने मानस पटल पर बनायेगा और उसी चित्र को फिर कैनवास पर उतार देगा। किसी के हृदय में संगीत की धुन आई तो वह संगीत को पहले मन में गुनगुनाएगा और उसके बाद किसी वाद्ययंत्र पर उतार देगा। इसी तरह उसके हृदय में एक स्पंदन आया एक संसार बनाऊँ और उसने इस संसार को बना दिया। उसने किस कैनवास पर बनाया? उसने अपने आप के कैनवास पर बनाया, उसने

स्वयं की चेतना पर उसको चित्रित किया, इसलिए उसने जब अपनी शक्ति को पहचाना कि मैं यह कर सकता हूँ तो उसी **प्रथम स्पंदन के साथ इस संसार का बीज पड़ा**। इसलिए शिव शक्ति एक समरस हैं, शिव और शक्ति को अलग नहीं किया जा सकता। उसके अपने विमर्श को उस प्रकाश से कैसे अलग करोगे, प्रकाश शिव है विमर्श शक्ति है, अस्तित्व शिव है और अस्तित्व की अभिव्यक्ति शक्ति है। प्रकाश और विमर्श दोनों पूर्ण अस्तित्व के दो पहलू हैं, शिव की पहचान उसकी शक्ति से है और उस शक्ति की पहचान शिव से है। जब उसकी इच्छा हुई कि संसार का एक खाका तैयार करूँ तब उसका नाम हुआ **सदाशिव**। सदाशिव ने अपनी अंतरचेतना में एक संसार बनाया। अभी संसार का स्वरूप अस्पष्ट है, उसका विमर्श था "अहं इदं" याने सदाशिव का बोध था **"संसार मुझमें है और मुझसे अभिन्न है"**। जब एक कवि के संवेदनशील मन को किसी दर्द की अनुभूति होती है तब एक कविता का बीजारोपण होता है। कवि की मातृभाषा कुछ भी हो अभी यह दर्द किसी भाषा से परे है, कोई शब्द नहीं रचे गए, अभी कवि का बोध है **"कविता मुझमें है और मुझसे अभिन्न है"**, कवि जानता है कविता अभी मेरे अन्दर ही है, कविता ने अभी जन्म नहीं लिया है, कवि से अलग उस कविता का कोई अस्तित्व नहीं है, कविता अभी उसका हिस्सा है और पूर्णतः उससे अभिन्न है। अभी किसी को न तो दिखाई गयी न सुनाई गयी न कागज पर लिखी, वह मेरे अन्दर है इस स्थिति का नाम था सदाशिव। अब शिव इस संसार

के स्वरूप को स्पष्ट करना आरम्भ करता है तो शिव की उस स्थिति को हम कहते हैं **ईश्वर**। ईश्वर का विमर्श है "इदं अहं" अर्थात "**यह सारा बन रहा संसार मैं ही हूँ**"। अब कवि अपने दर्द को शब्द देने लगता है, मन ही मन छंद बनाने लगता है, यहाँ भाषा के शब्द चुने जाने लगे भिन्नता के बीज पड़ने लगे। यहाँ कवि का विमर्श है "**यह आकार ले रही कविता मैं ही हूँ।**" जब शिवने संसार को रूप दे दिया, जीव भी बना दिया, पेड़ पौधे बना दिए, लेकिन कोई भी जीव हलचल नहीं कर रहा है! जहाँ प्रत्येक कण जानता है कि मैं शिव हूँ तो कोई किसलिए क्रिया करेगा? इसी तरह उसने सब कुछ बना दिया लेकिन कोई हलचल नहीं। प्रत्येक रचना का ज्ञान शुद्ध था, प्रत्येक रचना जानती थी कि मैं शिव हूँ तो कोई हलचल की उसे क्या आवश्यकता होगी? शिव की इस स्थिति का नाम है **शुद्ध विद्या**। अब कवि की कविता कागज़ पर लिख दी गयी लेकिन अभी अप्रकाशित है, कवि तक सीमित है, इस पर कोई प्रतिक्रिया संभव नहीं, अभी तक यह कविता कवि की निजी संपत्ति है। इस स्तर तक वह रचित संसार तथा स्वयं में अभिन्नता देखता है। कवि भी जानता है कि इस काव्य के प्रकाशित होने पर उस काव्य की विषयवस्तु, प्रतिक्रिया, प्रभाव आदि की सारी जिम्मेदारी उसे लेना है। आगे से कवि उस रचना के रचयिता के रूप में पहचाना जायेगा। प्रकाशन के अभाव में अभी कवि की कविता कोई हलचल उत्पन्न नहीं करती। अब काव्य का प्रकाशन ही माया है जहाँ उस मूल दर्द को आलोचनाओं और प्रतिक्रियाओं

का दंश झेलना होता है। संसार की कोई भी काव्य रचना कवि के अंतस की अभिव्यक्ति है। ऐसे ही यह संसार शिव के अंतस से अभिन्न है। जब तक माया नहीं थी अज्ञान का आरम्भ नहीं हुआ था। इसीलिये संसार बनाने को तत्पर शिव की इन पांच स्थितियों को शुद्ध अध्वा कहते हैं।

अशुद्ध अध्वा का आरम्भ

किसी हलचल के अभाव में संसार का खेल अभी तक सुषुप्तावस्था में है। अब परमेश्वर ने स्वयं बंधन में बंधा जाना स्वीकार किया तब **माया** अवतरित हुई। पांच स्थितियाँ हैं जिसको हम कहते हैं शुद्ध अध्वा याने सृष्टि रचना का वह मार्ग जो माया से परे है। **शुद्ध अध्वा है शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या**। इसके बाद अशुद्ध अध्वा आरम्भ हो जाता है, **माया के प्रभाव के आरम्भ होने से यह मार्ग अशुद्ध कहलाता है।** अशुद्ध अध्वा के सारे तत्त्व माया के अधीन हैं। माया सहित अशुद्ध अध्वा में एकतीस तत्त्व हैं। माया शिव की शक्ति का ही रूप है, शिव ने अपनी शक्ति को आदेश दिया कि तुम मुझे बांध दो। माया ने पांच पट्टियाँ बनायी कला, विद्या, राग, काल और नियति जिन्हें कंचुक कहते हैं। इस तरह माया ने उन पांच पट्टियों से असीम शिव को सीमित कर दिया जहाँ पर शिव अपनी पहचान भूल गये, अपना रास्ता भूल गये, अपने कर्तव्य भूल गये, भूल गये कि मैं शिव हूँ, भूल गये कि ये खेल है, भूल गये कि मेरे सिवाय और कोई है ही

नहीं, भूल गये कि मैं महाशक्तिशाली हूँ। एक से अनेक हो कर हम सब अपना स्वरूप भूल गये। इस घोर अंधकार का नाम है गहन, हमने परमार्थसार में पढ़ा था, **"परम परस्थं गहनाद् अनादिम्, एकं निविष्टं बहुदा गुहासु। सर्वालयं सर्वचराचरस्थं, त्वामेव शंभुं शरणं प्रपद्ये"॥** अर्थात् शिव इस माया के अँधेरे से परे है, अनादि है, वह एक विशिष्ट है उसके जैसा कोई दूसरा तो है ही नहीं, इसीलिए उसकी शक्ति स्वातंत्र्य शक्ति है, वह अकेले ही विभिन्न रूपों में प्रकट है। वह जीव और जड़ सबका घर याने विश्राम स्थल है क्योंकि जो जहाँ से आया वहीं वापस जायेगा। आप सब लोग अभी घर से आये हो वापस घर जाओगे कोई देर से जायेगा कोई जल्दी चला जायेगा। तो अंतिम रूप से हम सब हमारी यात्रा में चाहे कितनी भी दूर चले जायें अंतिम रूप से हमें उसी केंद्र पर आना है। सर्वालय अर्थात सबका घर, जहाँ सबकुछ लौट कर आयेगा चाहे चेतन चर सृष्टि हो अथवा जड़ अचर सृष्टि हो। मैं उस शम्भु की शरण लेता हूँ, प्रणाम करता हूँ, मुझे इस यात्रा में अपने तक आने का रास्ता बता, मुझे घर लौटना है, अब मुझे घर की याद आ रही है, मैं इस मेले से घबरा गया हूँ, मेरा मन इस मेले में नहीं लगता, बहुत हो गया इस संसार की दौड़ में, मुझे मालूम है कि इस दौड़ का कहीं अंत नहीं है, मैं थक गया हूँ, मुझे वापस लौटना है इसलिए शंभू मैं तुझे प्रणाम करता हूँ, मुझे अपने धाम की राह दिखा दे। इस तरह वह जीव इच्छा कर रहा है कि हे प्रभु तू मुझे अपने घर की राह बता दे। मैं तेरी शरण हूँ, मुझे अब अपने पास

बुला ले। इस तरह वह शिव को अपने से अलग मान कर प्रार्थना करता है। जब तक द्वैत दृष्टि है तब तक वह केंद्र से दूर है, वह परिधि पर बैठा है, शिव केंद्र में है इसलिए वह शिव को प्रणाम कर लक्ष्य निर्धारित करता है, लेकिन जिस क्षण उसको बोध होता है कि शिव मेरा ही स्वरूप है उस समय वह केंद्र में आ चुका होता है। इस तरह हमने अभी पढ़ा शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर शुद्ध विद्या **इसके बाद में गहन शुरू हो गया माया का गहन** अंधकार शुरू हो गया, ज्ञान पर अज्ञान आवृत्त हो गया और हम अपना स्वरूप भूल गये, स्वयं के गौरव को भूल गये, शक्ति को भूल गये और हम अपने आप को एक दीन हीन गरीब, एक सीमित प्यासे इन्सान की तरह देखने लगे। इस तरह व्यक्ति सीमित हो गया। अब इसके बाद दो तत्त्व अस्तित्व में आते हैं **पुरुष और प्रकृति**। पुरुष शुद्ध जीव चेतना है जो संसार की कर्ता और भोक्ता के रूप में शरीर में स्थित है, यह शिव चेतना ही है जो माया के कारण अज्ञान याने मलों से आवृत्त है। प्रकृति भोग्या है, इसका निर्माण जीव को कर्मफल भोगने के हेतु किया गया है। प्रकृति चैतन्य की ही अभिव्यक्ति है। सृष्टि निर्माण के आरंभिक चरण में मूल रूप से प्रकृति अनभिव्यक्त रूप में होती है और इसी से आगे की समस्त अभिव्यक्ति रूप लेती है। सीमित स्वंत्रता के साथ मनुष्य को कर्म करना है इस हेतु उसे ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दी गयीं जिन्हें आगे समझेंगे। ज्ञानेन्द्रियों से जो ज्ञान आता है उसको किसी पटल पर संगणित करना पड़ेगा, आने वाली जानकारियों और बाहर की जाने

वाली क्रियाओं को कहीं न कहीं तो समन्वित करना होगा, इस हेतु एक सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट याने केन्द्रीय संगणन संकुल के रूप में हमारा अन्तःकरण बनाया गया। इस अन्तःकरण में तीन हिस्से हैं, **मन, बुद्धि और अहंकार**। एक हमारा मन है जो हमेशा विकल्प देता रहता है चलें, अरे रहने दो अभी नहीं चलते, फिर बोलता है अच्छा यहाँ चलें, नहीं नहीं यहाँ नहीं वहाँ चलते हैं, चलो ये खाएँ नहीं ये नहीं वो खाते हैं, उसके लिए भी दस विकल्प हैं, मन आपको नये नये विकल्प देता जाता है, बुद्धि फिर तय करती है ये खा लेते हैं, वहाँ चलते हैं। बुद्धि निश्चयात्मक निर्णय लेती है। अहंकार आपको बताता है कि "यह काम मैं कर रहा हूँ"। यह सीमित 'मैं' है। मैं इस चमड़ी के भीतर रहता हूँ इस चमड़ी के बाहर संसार है। यहाँ अहंकार का मतलब घमंड या दर्प नहीं अहंकार का मतलब है कि स्वयं की दृष्टि में मैं अपना परिचय क्या मानता हूँ? मैं अगर इस चमड़ी के भीतर अपने आप को मानता हूँ तो ये मेरा जीव अहंकार है और यहाँ मेरी चेतना को कहते है जीव चेतना। यह अहंकार का अशुद्ध स्वरूप है। जब मैं मानता हूँ कि इस शरीर के अन्दर जो चैतन्य तत्त्व है वही मैं हूँ, यह शरीर तो मेरा छूटने वाला है, यह शरीर मैं नहीं हूँ तो इसको कहते हैं ईश्वर चेतना। ईश्वर चेतना के स्तर पर 'मैं' अहंकार का शुद्ध स्वरूप हो जाता है। लेकिन जब मैं मानता हूँ कि पूर्ण ब्रह्माण्ड मैं ही हूँ तो ये सर्वोत्तम या शुद्धतम स्वरूप हो जाता है और इस स्वरूप का नाम है शिव चेतना। जीव की चेतना तीन स्तरों में ऊपर उठती है। (१) "जीव चेतना" जब मैं मानता

हूँ कि मैं त्वचा के भीतर ही हूँ, बाहर नहीं, (२) "ईश्वर चेतना" जब मैं मानता हूँ कि मैं इस शरीर में रहने वाला चेतन हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ। और (३) "सर्वोच्च चेतना" या "शिव चेतना" जब मेरा बोध होता है कि पूरा ब्रह्माण्ड मैं ही हूँ, समस्त सृष्टि मेरा ही विकास है, यह बोध का स्तर है। इस तरह से हमने अन्तःकरण के तीन हिस्सों को समझा। अब इस सीमित जीव को सीमा के बाहर संपर्क करने के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की गयीं। अब जो एक था अनेक हो गया था इसलिए ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वह संसार से संपर्क बना कर कर्मेन्द्रियों से कर्म करने लगा। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनके द्वारा जीव चमड़ी के बाहर छूटे हुए अपने अंश का ज्ञान एकत्रित करने लगा। पांच इन्द्रियाँ हमको भिन्नता का ज्ञान परोसने लगीं, लेकिन शिवसूत्र का सूत्र है "**ज्ञानंबंधः**" ये ज्ञान जो इन्द्रियाँ परोस रही हैं बंधन का कारण है। इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर किया गया कर्म कर्मफल का जनक है। जो ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा लाया गया असल ज्ञान नहीं है, ये ज्ञान बंधन है। इस बंधन वाले ज्ञान में मत फंस जाना जो इन्द्रियाँ कहती हैं यह सुन्दर है, यह अपना है, यह पराया है, यह स्वादिष्ट है, यह बेस्वाद है, इन सब में पड़ना सचमुच में बंधन है। ये हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हमको द्वैत का ज्ञान लाती हैं, भिन्नता का ज्ञान लाती हैं। ये हैं **नेत्र, कर्ण, घ्राण, रसना एवं त्वचा**। इसके बाद हमारी पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं जिनके द्वारा हम कुछ करते हैं, कर्मफल के भाजक होते हैं और कार्ममल में फंस जाते हैं। तीन तरह के मल हैं आणवमल, कार्ममल और मायीयमल। इन मलों

में उलझते हुए हम संसार चक्र में घूमते रहते हैं। कर्म करने के लिए, उस बंधन में फंसने के लिए, कर्मफल भोगने के लिए, हमको पांच कर्मेन्द्रियाँ दी गयीं ताकि हम सीमित ज्ञान से कर्म करें, कर्मफल भोगें और संसार चलता रहे। जैसे हम कोई खेल खेलते हैं तो कुछ न कुछ नियम बना देते हैं कि ऐसे खेलेंगे, उसी तरह शिव-शक्ति ने हमको पांच कर्मेन्द्रियाँ दी जिनके द्वारा हमको कर्म करने की कुछ स्वतंत्रता दी गयी, हम कुछ करते हैं और फिर उसका फल भोगते हैं। हम कर्म कैसे करते हैं? वागेंद्रिय जीभ से हम बोल कर कुछ कर्म करते हैं, किसी को मीठा बोल सकते हैं, किसी को कड़वा बोल सकते हैं। इसके अलावा हाथ से हम बहुत कुछ करते हैं, पैर से चल सकते हैं, जिस उद्देश्य से कार्य करते हैं, जिस उद्देश्य से चलते हैं, जिस आशय से बोलते हैं वे उद्देश्य या आशय ही कर्मफल निर्धारित करता है। **हाथ, पैर, वाचा (जीभ), पायु और उपस्थ** ये पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं। पायु विसर्जन के अंगों को कहते हैं, उपस्थ जननांगो को बोलते हैं। इस तरह हम पांच तरह के अंगो के द्वारा कुछ न कुछ कार्य कर सकते हैं ये कार्य अच्छे भी हो सकते हैं, बुरे भी हो सकते हैं अर्थात पुण्य या पाप की श्रेणी मे रखे जा सकते हैं, क्योंकि द्वैत की दुनिया है, हर चीज दो तरह की होगी अच्छी होगी तो बुरी भी होगी, परोपकार की होगी तो स्वार्थ की भी होगी। अच्छा या बुरा प्रत्येक कर्म फल देता है जिससे मुक्ति दूर होती जाती है लेकिन इन्ही इन्द्रियों से **हम कोई कर्म जब मात्र कर्तव्य बोध से करते हैं तथा परिणाम के प्रति उदासीन रहते हैं तो वह**

कार्य कर्मफल का जनक नहीं होता। सत्य ज्ञान पहले किये हुए कर्मों को भी नष्ट कर देता है जिससे मुक्ति की राह आसान हो जाती है। इस तरह पांच तरह की ज्ञानेन्द्रियों और पांच तरह की कर्मेन्द्रियों के द्वारा हम एक दूसरे से संपर्क करते हैं, अंतर्क्रिया करते हैं। ये दस इन्द्रियाँ हैं, माया के छः तत्त्व माया, कला, विद्या, राग, काल और नियति तथा शुद्ध अध्वा के पांच तत्त्व शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्ध विद्या, इस प्रकार हुए इक्कीस तत्त्व। अब समस्या हैं कि पांच ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को कैसे एकत्रित करें? तब **इन्द्रियों से तन्मात्रायें बनीं**। कर्णेन्द्रिय से बना शब्द, त्वचा इन्द्रिय से बना स्पर्श, नेत्रेंद्रिय से बना रूप, जिह्वा इन्द्रिय से बना रस, घ्राणेन्द्रिय नासा से बनी गंध। इस तरह **शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध** नाम की पांच तन्मात्रायें अस्तित्व में आयीं। यहाँ यह जान लें कि 'शब्द' याने समग्र रूप से समस्त शब्द, कोई विशेष शब्द नहीं, ऐसे ही अन्य तन्मात्राओं को भी समझना चाहिए। वासनाओं का अधिष्ठान इन पांच तन्मात्राओं में होता है। इनके द्वारा ही इन्द्रियाँ संसार का ज्ञान संकलित करती हैं। **अंतःकरण के तीन तत्त्वों के साथ इन पांच तन्मात्राओं को ही सम्मिलित रूप से पुर्याष्टक कहते हैं। यह पुर्याष्टक ही वर्तमान जीवन की दिशा एवं वासनाओं को अगले शरीर तक ले जाता है** जैसे किसी उपवन से वायु उपवन की सौरभ को कोसों दूर ले जाती है। शब्द के द्वारा कर्णेन्द्रिय को, स्पर्श के द्वारा त्वचा को, रूप के द्वारा नेत्रों को, रस के द्वारा जिह्वा को और गंध के द्वारा नासा को भिन्नता का ज्ञान

मिलता है। इस तरह पांच तन्मात्रायें अस्तित्व में आयीं। अब इन पांच तन्मात्राओं के अनुरूप परमेश्वर ने रचे **पांच महाभूत** ताकि सृष्टि का खेल इनके तालमेल से सुचारू रूप से चल सके। शब्द से बना **आकाश**, स्पर्श से बनी **वायु**, रूप से बनी **अग्नि** अथवा तेज, रस से बना **जल** और गंध से बनी **पृथ्वी**। इन पांच महाभूतों से सृष्टि के विभिन्न प्रमेय बने। शिव सबसे विरलतम तत्त्व है और पृथ्वी सबसे मोटा सबसे स्थूल तत्त्व है। शिव से पृथ्वी तक छत्तीस तत्त्व हो गये। इनका आपस में सीधा सीधा रिश्ता है, जैसे कर्णेन्द्रिय से बना शब्द और शब्द से बना आकाश या अन्तरिक्ष, त्वचा से बना स्पर्श और स्पर्श से बनी वायु, नेत्रेंद्रिय से बना रूप और रूप से बना तेज, जिह्वा से बना रस और रस से बना जल, घ्राणेन्द्रिय से बनी गंध और गंध से बनी पृथ्वी। इस तरह से पांच महाभूतों ने जन्म लिया। इन्द्रियाँ, तन्मात्रायें तथा महाभूत आपस में अनुकूल याने कॉम्पेटिबल हैं जैसे एक विशिष्ट द्वार पर एक विशिष्ट ताला लगा है और उसकी एक विशिष्ट चाभी है।

सूक्ष्म से स्थूल का निर्माण

आपको उल्टा लगेगा कि गंध से पृथ्वी कैसे बन गयी ये तो पृथ्वी से गंध बनाना चाहिए थी! लेकिन चेतन तत्त्व महत्वपूर्ण है, शिव के अधिक करीब है, जड़ कम महत्वपूर्ण है, चेतन से ही जड़ अभिव्यक्त होता है। विरल से ही स्थूल की अभिव्यक्ति होती है। मेरी नासा का

एक देवता है, मेरी आँख का अपना देवता है, मेरे कान का अपना देवता है, मेरी त्वचा का अपना देवता है और ये सब देवता अथवा देवियाँ कौन हैं? इन्हें हम करणेश्वरी देवियाँ या करणेश्वर देव कह सकते हैं। जीव चेतना याने अव्यक्त प्रकृति से भिन्न भिन्न देवता अस्तित्व में आये। कान के लिए अलग देवता बनाया, आँख के लिए अलग देवता बनाया, त्वचा के लिए अलग देवता बनाया, नाक के लिए और जिह्वा के लिए देवता बनाये, इन देवताओं ने ही इन्द्रियों को रचा और इन इन्द्रियों ने रचना क्रम आगे बढ़ाया। इस तरह पांच देवता बने और उन पांचो देवताओं ने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध नाम की पांच तन्मात्रायें बनायीं। ऐसे ही कर्मेन्द्रियों के भी देवता हैं। **सूक्ष्म ही स्थूल की रचना करता है, चेतन ही जड़ को रचता है,** जैसे मकान आपको नहीं बनाएगा आप मकान को बनाओगे? चेतन आप हो मकान नहीं। देवता चैतन्य के अधिक निकट हैं, इन्द्रियाँ देवताओं से कमतर चेतन हैं, तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और कम चेतन हैं और अंत में पांच महाभूत सबसे कम चेतन हैं। चेतन विरलतम तत्त्व से मोटा तत्त्व बनता है जो जितना सूक्ष्म है वह उतना ही असीम है, व्यापक है। शिव सबसे सूक्ष्म हैं इसलिए शिव सबसे व्यापक हैं, शिव से अलग कुछ है ही नहीं और पृथ्वी सबसे स्थूल है, इसलिए अन्तरिक्ष में उसकी सीमा बहुत छोटी सी है। जितना विरलतम उतना व्यापक, वह प्रत्येक जगह है, उपनिषद् कहते हैं कि उसके कान नहीं हैं फिर भी सुनता है, आँखें नहीं हैं फिर भी देखता है, नाक नहीं है फिर भी सूंघता है, जिह्वा

नहीं है फिर भी चखता है क्योंकि वह सबसे ज्यादा व्यापक है, वह देवताओं का स्वामी है, बिना पैर के चलता है और तेज से तेज दौड़ने वाले के भी पहले पहुँच जाता है क्योंकि आप दौड़ कर जाओगे कहाँ? इस ब्रह्माण्ड के बाहर तो जा नहीं सकते, जहाँ जाओगे सब कुछ वही है, जहाँ जाओगे उसी को पाओगे। ब्रह्माण्ड क्या है? शिव ही तो है इसलिए किसी भी जगह पहुँच जाओ वह वहाँ पहले ही उपलब्ध है! वह बिना पैर के दौड़ता है क्योंकि उसको दौड़ने के लिए पैर की जरूरत नहीं, वह तो पहले ही वहाँ पर उपस्थित है, कहीं ऐसी जगह नहीं है जहाँ शिव नहीं है। याने वह प्रकाश की गति से भी तेज चलता है। मजेदार बात यह है कि इस प्रकाश की गति से तेज चलने के प्रमाण वैज्ञानिक प्रयोगों में भी आने लगे है जो हैरान करनेवाले हैं क्योंकि आइंस्टीन के अनुसार कोई भी सूचना ब्रह्माण्ड में प्रकाश की गति से अधिक तेजी से संचरण नहीं कर सकती।

हम क्या हैं?

पांच महाभूतों के मिश्रण से हमारा जड़ शरीर बना और इसमें जो चेतना है वह शिव है। हमारा शरीर जड़ है जो स्वातंत्र्य शक्ति से बना, तो हम सब क्या हैं? इस जड़ शरीर के रूप में विमर्श हैं और चेतना के रूप में प्रकाश हैं, प्रकाश शिव का नाम है, विमर्श शक्ति का नाम है, प्रकाश के रूप में हमारी चेतना है, विमर्श के रूप में हमारी शक्ति जो सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त है, अब मुझमें और आपमें क्या भेद है?

संसार और मेरे बीच क्या भेद है? हमारे बीच एक माया का पर्दा है जिसने हमको सत्यदर्शन से रोके रखा है जैसे मथुराजी में बांकेबिहारी के झपके होते हैं। थोड़ी सी देर के लिए खुला फिर गायब हो जाता है। पर्दा प्रतीक है माया का, पर्दा बीच में आता है और परमेश्वर को दृष्टि से ओझल कर देता है फिर क्षण भर को कृष्ण के दर्शन होते हैं और फिर बीच में पर्दा आ जाता है, क्षणभर के लिए दर्शन होते हैं, हम उसको निहारें जब तक वह फिर खो जाता है, हम उस परदे के पार देख ही नहीं पाते। सांसारिक आनंद भी शिव के आनंद सागर की कुछ बूँदें हैं लेकिन किसी भी सांसारिक आनंदानुभव के समय हमारी दृष्टि संसार की ओर होती है याने उस वस्तु की ओर होती है जो हमें आनंद देती प्रतीत होती है जबकि यह आनंद भीतर से उत्पन्न हो रहा है बाहर की वस्तु तो उसे मात्र उद्घाटित कर रही है। दूसरे शब्दों में हमारी दृष्टि केवल परदे पर है, जब पर्दा खुलता है तब भी हम पर्दा ही देखते रहते हैं बांकेबिहारी पर दृष्टि जाती ही नहीं! और जब हमारी आँखों पर बंधी कंचुकों की पट्टियां खुल जायेंगी तब उस पर्दे में भी बांकेबिहारी दिखने लगेगा! अब कोई झपका हमें उस परम प्रिय के दर्शन से नहीं रोक सकता। तब योगी कहता है "जित देखूं तित तू"। आनंद हमारा स्वरूप है, हमको लगातार पुकार रहा है, हम उस पार जाने से डरते हैं क्योंकि यह हिम्मत का काम है, **उस पार जाने पर तो वह सब खो जायेगा जिसका मोह किये बैठे हैं।** तो आज अपनी बात इतनी ही। गुरु नारायण ----------

द्वितीय अनुभव

आज २१ नवम्बर २०१३ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। पिछली बार से हम एक आचार्य क्षेमराज द्वारा रचित ग्रंथ पराप्रावेशिका पर चर्चा कर रहे हैं।

पराप्रावेशिका का उद्देश्य

सृष्टि रचना के दो हिस्से हैं 'अपर' और 'पर'। **अपर** वह है जो परिधि है, अंतिम नहीं है, वह अत्यधिक भिन्नता भरा है, अशांत और अस्थिर है। लेकिन **पर** वह है जो केंद्र है, परम है, अंतिम है, जहाँ सृष्टि की समस्त भिन्नता समाप्त हो जाती है और स्थायी शांति है। जो सर्वोच्च है वह 'पर' है। सर्वोच्च का बोध कैसे पायें? यह बोध ही मनुष्य का सर्वोच्च कर्त्तव्य है। उस बोध की ओर अग्रसर होने के लिए ही यह ग्रंथ है, जिसका नाम है पराप्रावेशिका।

हम अगली पीढ़ी के लिए विरासत क्या देंगे?

हम बच्चों को अक्सर संसार के बारे में बताते हैं कभी अध्यात्म के बारे में कोई शिक्षा नहीं देते। उनकी चेतना को आवृत्त कर, रचनात्मकता को आवृत्त कर बच्चों को मशीनवत जड़ बना देते हैं ताकि वे संसार के लिए अधिक अनुकूल बन जायें, धनार्जन के लिए

अधिक उपयुक्त योग्यता पा लें। यह हमारी विडंबना है। हम हमारे बच्चों को शिक्षा क्या और कैसे दें, इसके लिए हमनें बच्चों की शिक्षा देने की नीति बनायी ही नहीं। इसके कई कारण हैं, लेकिन आज अध्यात्म को भी सम्प्रदाय समझने की गलती को वृहद स्तर पर सुधारना असंभव सा प्रतीत होता है। संसार में अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा, भौतिक विकास, सीमाओं की सुरक्षा, ये सभी गौरव से जीने के लिए जरूरी हैं लेकिन अध्यात्म ज्ञान के लिए इनका त्याग करने की आवश्यकता नहीं है, साथ ही इन सब प्रतिस्पर्धाओं के बीच आध्यात्मिक ज्ञान का त्याग भी नहीं करना है। आखिर **ज्ञान पाने के बाद ही तो अर्जुन निर्भीक हो कर महासंग्राम में विजयी हुए**। हम आने वाली पीढ़ी को यह बताने से चूक जाते हैं कि इस संसार की भागदौड़ एवं उपलब्धियों से परे भी एक सत्य है जो संसार से कहीं अधिक मूल्यवान है। जीने की कला के दो पहलू हैं, एक बहिर्मुख और एक अंतर्मुख। मात्र बहिर्मुखी विकास अंतर्यात्रा से दूर ले जाता है, मनुष्य के अंतस में लक्ष्यहीनता की बेचैनी भर देता है। लेकिन अंतर्मुख विकास सांसारिक यात्रा को भी सहज और सार्थक बना देता है, जीवन को एक लक्ष्य प्रदान कर नैतिक साहस से परिपूर्ण कर देता है। इसलिए हम अपनी जीवन यापन की व्यवस्था करें, इसको सुन्दर भी बनाएँ लेकिन उसके साथ में यह न भूलें कि हमारे मनुष्य जीवन का कुछ और भी उद्देश्य है, जो इससे हटकर भी है और बढ़ कर भी है। संसार में खाने पीने का काम तो सभी करते हैं जीव-जंतु, चीड़ियाँ भी

करती हैं। चिड़िया भी घोसला बनाती है, बच्चे पैदा करती है। उससे हटकर भी मनुष्य जीवन का कोई गौरव है इस बात को हमारे हृदय में जगह देने के लिये ही पराप्रावेशिका नामक ग्रंथ रचा गया है। ऐसे ही ग्रंथ आदिशंकराचार्य ने भी लिखे थे, जैसे दृग्दृश्य विवेक, आत्मबोध, तत्त्वबोध, पंचमहाभूत विवेक आदि जो वेदान्तिक अवधारणाओं पर आधारित हैं। ये ऐसे ग्रंथ हैं जिन्हें पढ़कर हम, इस संसार की संरचना, उसमें हमारी स्थिति और हम जिसे ईश्वर कहते हैं, वह क्या है? इस सबको ठीक से समझ सकते हैं। पराप्रावेशिका भी एक ऐसा ही ग्रंथ है। काश्मीर शैव दर्शन से सम्बंधित इस ग्रंथ को आचार्य क्षेमराजजी ने करीब एक हजार वर्षों पहले लिखा है।

इस संसार के दो पहलू

इस संसार के दो पहलू हैं, एक 'पर' और एक 'अपर'। जो 'पर' है वह परमेश्वर है, वह केंद्ररूप है, वह अदृश्य है। जो 'अपर' है वह चक्ररूप है, उसकी अनगिनत परिधियाँ हैं। इस अपर संसार को इन्द्रियों से जाना जा सकता है, नापा जा सकता है, यह अस्थिर है, जन्म लेता है, रूप बदलता है और नष्ट भी होता है। केंद्र अदृश्य है लेकिन उसके बगैर चक्र हो ही नहीं सकता। केंद्र कभी दिखाई नहीं देता क्योंकि उसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, कुछ नहीं होती वह शून्य आयाम है लेकिन स्वप्रमाणित है। चक्र कितनी भी तेजी से घूमे केंद्र सदा स्थिर होता है। जो 'अपर' है वह चक्र है, परिधि है, संसार है जहाँ अनगिनत भिन्नतायें

हैं, सीमायें हैं, आयाम हैं और यहाँ सतत हलचल होती है। केंद्र में कोई हलचल नहीं होती यह वैज्ञानिक सत्य है कि कितनी भी तेजी से घूमता हुआ चक्र हो, उस चक्र के केंद्र में आप हमेशा स्थिरता ही पाओगे। 'पर' में प्रवेश करने का तात्पर्य है परमेश्वर का बोध और उसी के लिए यह ग्रंथ लिखा गया है। उस बोध के लिए पहले हम संसार की संरचना को समझते हैं जो छत्तीस तत्त्वों से बना है, काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार इसमें ३६ तत्त्व हैं। इन तत्त्वों को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है।

शुद्ध एवं अशुद्ध मार्ग

शुद्ध अध्वा जहाँ पांच तत्त्व हैं शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्ध विद्या। ये **शुद्ध इसलिए कहलाते हैं क्योंकि ये माया के प्रभाव से परे हैं।** अध्वा का मतलब होता है मार्ग याने वह क्रम जिससे परमेश्वर स्वयं को संसार के रूप में अभिव्यक्त करता है। 'परम' शुद्ध और सर्वोच्च तत्त्व है उसे हम शिव कहते हैं यह नाम हमारी रचना है, शैव दर्शन में सर्वोच्च सत्ता का यही नाम है। वह वाणी से परे है परावाणी में उसके लिए कोई नाम जरूरी नहीं है ये नाम हमनें ही रखा, हम उसको परशिव कह सकते हैं, चैतन्य कह सकते हैं, सर्वोच्च सत्ता कह सकते हैं, जो कुछ भी कहो वह सृष्टि रूपी पिरामिड का शिखर है, वह अंतिम बिंदु है, सर्वोत्तम है। हम उसे शिव कहते हैं और जो उसकी शक्ति है, जिसके द्वारा उसने इस संसार को निर्मित किया, उस शक्ति का नाम है

स्वातंत्र्य शक्ति। शिव और शक्ति दोनों अभिन्न हैं उन दोनों को अलग करना संभव नहीं है। जैसे मुझे मेरी शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता, उस शक्ति के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ और वह शक्ति मेरे बिना आधारहीन है। शक्ति को रहने के लिए आधार चाहिए। शिव और शक्ति ये दो तत्त्व समझने मात्र के लिए दो हैं लेकिन वास्तव में वे एक ही हैं। शुद्ध अध्वा का तीसरा तत्त्व है सदाशिव, चौथा ईश्वर और पांचवा शुद्ध विद्या। इसके बाद **अशुद्ध अध्वा** होता है जिसमें इकत्तीस तत्त्व होते हैं। जिनमें प्रथम **माया**, **माया के पांच कंचुक** अर्थात माया के वे साधन जिनके द्वारा वह अपना प्रभाव उत्पन्न करती है तथा वे पच्चीस तत्त्व होते हैं जो पांच कंचुकों के कारण माया के अधीन होते हैं, इनमें **पुरुष**, **प्रकृति**, **अंतःकरण** के तीन तत्त्व मन, बुद्धि और अहंकार, **पांच ज्ञानेन्द्रियाँ** नेत्र, नासा, जिह्वा याने रसना, कर्ण तथा त्वचा, **पांच कर्मेन्द्रियाँ** हाथ, पैर, वाणी, पायु याने मल मूत्र त्यागने के अंग तथा उपस्थ याने जननेंद्रियाँ, **पांच तन्मात्रायें** शब्द, स्पर्श, रूप रस एवं गंध और अंत में **पांच महाभूत** आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी। माया के प्रभाव के कारण ये अज्ञान के अन्धकार में होते हैं इसलिए अशुद्ध कहलाते हैं।

सृष्टि रचना का आरम्भ शिव विमर्श में

एक कवि अपने हृदय में काव्य की रचना करता है और फिर उसे कागज पर उतारता है, एक चित्रकार हृदय में चित्र की रचना करता है

और फिर उसे कैनवास पर उतारता है, एक संगीतकार हृदय में एक संगीत की रचना करता है और फिर उसे वाद्य पर उतारता है, मतलब अभिव्यक्ति के पहले रचनाकार के अंतस में उस रचना का जन्म होता है, इसी तरह शिव के विमर्श में एक संसार बनता है, रचनाकार के विमर्श में रचना अपना अस्तित्व आरम्भ करती है। विमर्श शिव की शक्ति है। विमर्श का मतलब होता है अपना स्वयं का अंतरावलोकन करना अपने भीतर देखना, स्वयं को परखना। अगर आप यहाँ बैठ कर अपना अन्तरावलोकन करोगे तो आप जानोगे मेरा नाम यह है, मेरी उम्र इतनी है, आज मैं आश्रम में बैठा हूँ, मैं यहाँ से उठ सकता हूँ, यहीं पर बैठ सकता हूँ, मैं अपनी मर्जी का मालिक हूँ। "मैं क्या कर सकता हूँ", इसके बारे में भी आप जानते हो, यह भी जानते हो कि क्या नहीं कर सकते। मैं यहाँ से जा सकता हूँ लेकिन मैं आसमान में उड़कर नहीं जा सकता, आप यह जानते हो कि आप क्या कर सकते हो, आप अपनी क्षमताओं को परख लेते हो, अपनी क्षमताओं और शक्तियों को जानना ही आपका विमर्श है। विमर्श में आप स्वयं के बारे में बहुत कुछ जान लेते हो कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कैसा हूँ। जब शिव अपना विमर्श करता है तो वह जानता है कि मेरी शक्ति का विरोध है ही नहीं, क्योंकि मेरे सिवा कोई है ही नहीं। मैं अकेला हूँ, मेरी शक्ति का विरोध कौन करेगा? उसकी शक्ति निर्विरोध होती है इसलिए उसे कहते हैं स्वातंत्र्य शक्ति, जिसे हम कई नामों से पुकारते हैं जैसे माँ, दुर्गा, काली, माता, पार्वती, आद्या आदि। जो कुछ भी है वह शिव और

शक्ति है। जैसे ही शिव के विमर्श में एक संसार का प्रथम स्पंदन होता है कि मैं एक संसार बनाऊं, वह अपने आपको संसार बनाने में सक्षम पाता है, “हाँ मैं संसार बना सकता हूँ”। अब संसार की एक छवि उसकी चेतना में उभरती है, परमेश्वर शिव की उस स्थिति का नाम हैं सदाशिव। यहाँ उसके हृदय पटल पर उसने एक चित्र बना लिया। विमर्श द्वारा अब वह जानता है कि मैं ऐसी दुनिया बनाने के लिए सक्षम हूँ, जैसे ही वह दुनिया बनाने के लिए सक्षमता महसूस करता है तो वह अपने शुद्ध स्वरूप से थोड़ा सा नीचे उतर जाता है क्योंकि अब वह अशुद्धता की दिशा में बढ़ रहा है। अभी अशुद्ध नहीं हुआ है, अशुद्धता की दिशा में बढ़ रहा है याने ‘पर’ से ‘अपर’ की दिशा में बढ़ रहा है, अभी माया का प्रवेश नहीं हुआ है इसलिए अभी यह अवतरण मार्ग शुद्ध अध्वा कहलाता है। इसके बाद अगली स्थिति है ईश्वर। ईश्वर और सदाशिव स्थिति में एक संक्षिप्त सा अंतर है, सदाशिव का विमर्श है “अहम् इदं” अर्थात् वह जानता है कि यह संसार मेरे अन्दर ही है। अभी तक कोई ‘अन्य’ है ही नहीं। जो कुछ भी है वह मैं ही हूँ और मेरे सिवाय मध्यम पुरुष अथवा उत्तम पुरुष, अदर पर्सन का अस्तित्व है ही नहीं, न ही कोई प्रमेय अर्थात वस्तु है। जब इदं याने ‘यह’ का अस्तित्व रूप लेने लगता है, संसार बनने लगता है, कविता के शब्द रूप लेने लगते है, उस समय उसका अनुभव होता है “इदं अहम्”। अब उसको इदं याने संसार की रूपरेखा दिखने लगती है लेकिन फिर भी वह जानता है कि यह मैं ही हूँ। **इदं का मतलब है**

वह सब कुछ जिसे कोई स्वयं से अलग अनुभव कर सके। "अहम् इदं" का अनुभव सदाशिव का है। 'इदं अहम्' का अनुभव ईश्वर का है, जब संसार विकसित होने लगता है। संसार उस समय उसे इदं भी दिखाई देता है और अहम् भी दिखाई देता है। लेकिन अभी भी उसे यह मालूम है कि जो कुछ संसार निर्मित हुआ है वह मैं ही हूँ, कण कण को यह मालूम है कि मैं शिव हूँ, प्रत्येक कण शिव विमर्श में है, किसी कण को यह अज्ञान नहीं कि मैं शिव नहीं हूँ। इसलिए उस स्थिति में किसी का कोई कर्तव्य नहीं। हम कहते हैं कि ज्ञानी का कोई कर्तव्य शेष नहीं, क्योंकि हमारा परम कर्तव्य है शिवत्व प्राप्त करना और जब कण कण जानता है कि मैं शिव हूँ तो उसका कौन सा काम शेष है? एक सांसारिक कर्तव्य होता है भूख प्यास शांत करने हेतु उपक्रम करना, कामनाओं के पूरा करने का प्रयास करना लेकिन शिव को न तो कोई कामना हैं न ही भूख प्यास लगती है। कर्तव्य नहीं इसलिए वह शांत चुपचाप बैठा रहता है, जब कोई हलचल नहीं होती तो शिव को लगता है कि मैंने संसार तो बना दिया लेकिन मुझे इस खेल में कुछ मजा नहीं आ रहा, आनंद नहीं आ रहा, इदं और अहम् के बीच अभी भी कोई भेद उत्पन्न नहीं हो पाया है। एक खेल खेलना था जैसे अगर हम चार मित्र ब्रिज खेलने बैठें हैं, आप मेरे पक्के दोस्त हो लेकिन खेल में मैं अपने पत्ते आपको नहीं बताऊंगा, आपसे अपने पत्ते गोपनीय रखूँगा। खेल में भी हम हमारे बीच में विभाजन कर लेते हैं, यह हमारा दुश्मन, यह हमारा दोस्त। हम पार्टनर और ये हमारे

विरोधी। वे दुश्मन नहीं हैं लेकिन हमनें उनको दुश्मन मान लिया, कितनी देर के लिए? जब तक यह खेल चले जब तक दुश्मन मान लिया। इस तरह शिव को लगा कि कण कण को जब मालूम है "मैं कौन हूँ" तो खेल में मजा कैसे आयेगा? अगर हम सारे पत्ते खुले रखकर खेलें तो खेल में कोई मजा नहीं आता। मजा तब आता है जब हमारे बीच में कुछ प्रतिद्वंदिता हो खेल का मतलब ही होता है प्रतिस्पर्धा। तो शिव ने प्रतिस्पर्धा पैदा करने के लिए संसार की इन रचनाओं के बीच कुछ अवरोध लगाना ठीक समझा। कुछ दायरे बनाना पड़ेंगे ताकि हर कोई यह समझे कि मैं अलग सत्ता हूँ और उसके बाद वह दूसरे से प्रतिस्पर्धा करे, तब ही खेल रोचक होगा। इस कारण शिव ने उस खेल को अस्तित्व में लाने के लिए, अपनी ही शक्ति को, जो सर्वोच्च शक्ति थी उसको आदेश दिया कि मुझमें अज्ञान उत्पन्न करो, मुझे अपर की ओर ले चलो। इस हेतु **शिव की शक्ति ने माया का रूप ग्रहण किया। माया शक्ति और कुछ नहीं शिव की स्वातंत्र्य शक्ति ही है।** "तुम माया बन कर ज्ञान को ढँक दो" ताकि प्रत्येक जीव समझें कि "मैं अलग हूँ", हर कोई समझे कि "मैं सीमित जीव हूँ", मेरी सीमित सत्ता है। इस तरह माया ने प्रत्येक जीव की आँखों पर अज्ञान की पट्टी बाँध दी। अब शिव को खेल में मजा आने लगा, अब लोग एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे, प्रेम करने लगे, घृणा करने लगे, ईर्ष्या करने लगे, एक दूसरे को परास्त करने की कोशिश करने लगे, एक दूसरे का हक छीनने लगे। दुनिया

का खेल शुरू हो गया। यहाँ **छला जाने वाला भी शिव है और छलने वाला भी शिव है,** तभी तो हम कहते हैं कि शिव विश्वरूप भी है और विश्वातीत भी है। यह जाने बगैर कि हम एक ही सत्ता के हिस्से हैं हम विरोधी हो गए, जैसे पेड़ की कुछ पत्तियाँ आपस में लड़ रही हैं "मेरा कुल उत्तम है, मेरी जड़ें उत्तम हैं, मेरा रंग बेहतर है" लेकिन वे एक ही पेड़ की पत्तियाँ हैं! जाने बगैर हम आपस में प्रतिस्पर्धा, लड़ाई, झगड़ा सब कुछ करने लगे। शिव सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त हो कर भी सृष्टि से परे बना रहा जैसे सूर्य अपनी जगह पर बैठा है लेकिन अपनी किरणों को धरती तक भी भेज देता है और अन्य ग्रहों तक भी भेज देता है। इस तरह उसने हमको जीवन प्रदान कर यह अनुभव दिया कि "मैं अलग हूँ"। अनुभवकर्ता के रूप में शिव स्वयं ही है। जिसको 'मैं' बोलता हूँ वही तो शिव है, वही तो 'मैं' कहता है। जो अपना विमर्श करता है कि मैं क्या हूँ, मेरा नाम यह है, मेरी उम्र इतनी है, यहाँ बैठा हूँ, यह कर सकता हूँ, यह नहीं कर सकता यह सोचने चिंतन करने के पीछे जो चेतना है वही शिव है। वही सर्वोच्च सत्ता है, उसी को पहचानना है, उसी को अपना स्वरूप जानना है। शरीर की सीमा को अपना मत मानो क्योंकि यह तो माया द्वारा उत्पन्न किया गया भ्रम है। शिव ने जैसे ही माया का अवतरण किया, जगत में अँधेरा छा गया, जो सर्वोच्च प्रकाश था वह लुप्त हो गया। इसलिए माया के अधीन आने वाले तत्त्वों को अशुद्ध कहते हैं, गहन कहते हैं याने गहरे अंधकार में।

शिव ही हमारा घर है

वह सर्वालय है, सबका घर है, अंतिम विश्राम है। क्योंकि जो कुछ भी निकला है उसी से निकला है और उसी में समा जायेगा। समस्त ब्रह्माण्ड उसी चेतना से विकसित हुआ है और उसी में समा जायेगा। घर से आप निकलते हो वापस घर जाते हो, अभी घर से आश्रम आये हो तो वापस घर जाओगे, घर से ऑफिस जाओगे वापस घर जाओगे, घर से तीर्थ जाओगे और वापस घर लौट के आओगे, दूरी कम हो सकती है, समय कम हो सकता है, समय ज्यादा हो सकता है लेकिन अंतिम रूप से आपको अपने घर लौटना है। अतः सर्वलायम् वह सबका घर है, किनका? सर्वचराचरस्थं, जितने चर हैं याने प्राणी हैं और अचर हैं जैसे पत्थर हैं, झरना है, सूरज है, चाँद है, सितारे हैं, ये जमीन है, ये आसमान है सब कुछ उसी में सिमट जाना है क्योंकि उसी से निकला है उसी में सिमट जायेगा। साधक शिव से प्रार्थना करता है कि मैं यहाँ परिधि पर खड़ा हूँ मुझे अपने केंद्र में बुला लो, मुझे अपनी चेतना में समा लो और मेरी आँखों की इन पट्टियों को खोल दो जिनके कारण मैं सत्य को नहीं देख पा रहा हूँ। अब इसके बाद आती है माया। हमनें पढ़ा शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्ध विद्या। यहाँ तक माया का कोई काम नहीं इसलिये जो कुछ भी बना वह अपने एक शरीर की तरह होता है जैसे मानो मैं आज ५० किलो का हूँ और कल ७० किलो का मोटा हो जाता हूँ तो भी जो अतिरिक्त मात्रा है उसको मैं जानता हूँ, "मैं ही हूँ"। अगर ९० किलो का भी हो गया तो जानता हूँ

मैं ही हूँ इसी तरह वह शिव मोटा होता चला गया और ये ब्रह्माण्ड का रूप ले लिया तब तक भी वह जानता था कि ये मैं ही हूँ। लेकिन उसके बाद में उसने सोचा कि मजा नहीं आ रहा खेल में, अब खेल में तब मजा आएगा जब इसके हिस्से कर दिए जाएँ और उसने फिर अपने ही स्वरूप से जीव बना दिया, अपने ही स्वरूप से ब्रह्माण्ड में चर भी बना दिए, अचर भी बना दिए जैसे पेड़ पौधे, झरने, सूर्य, चन्द्र बना दिए और इन सबको नियमों में सीमित कर दिया। भौतिक शास्त्र के नियम, गणित के नियम, रसायन शास्त्र के नियम बनाये। इन सारे नियमों का नियामक वही है। इस सीमांकन के खेल में उसने जीव की प्रज्ञा को सीमित कर दिया। माया नाम का छठा तत्त्व शिव की शक्ति से उत्पन्न हुआ और छठे तत्त्व के हाथ में शिव ने पांच शक्तियाँ दीं कि तुम इन शक्तियों से मुझे नीचे गहन में उतारो तब खेल रुचिकर होगा। तब शिव ने माया की पांच शक्तियों कला, विद्या, राग, काल तथा नियति द्वारा स्वयं को जीव के रूप में सीमित कर लिया। कला के द्वारा उसने सर्वकर्तृत्व की शक्ति याने बिना अपवाद सब कुछ कर सकने की क्षमता को सीमित कर्तृत्व में बदल दिया मतलब सब कुछ इच्छा मात्र से करने वाला अब सीमित क्षमता वाला बन गया। वह सब कुछ जानता है, लेकिन विद्या नामक कंचुक द्वारा माया ने जीव के जानने की शक्ति को अत्यंत सीमित कर दिया, हम सब शिव की तुलना में बहुत कम जानते हैं। वर्तमान का ज्ञान भी हमारी इन्द्रियों के द्वारा जो हमें परोसा जा रहा है उतना ही जानते हैं, बाकी कुछ नहीं जानते। । राग

के द्वारा हमको अतृप्त बना दिया गया। शिव पूर्ण तृप्त था, वह अकेला ही था तो उसको किस चीज की कमी हो सकती थी? कुछ पाने की इच्छा तब होती है जब हमारे पास किसी वस्तु की कमी हो जो हमको चाहिए अथवा किसी स्थिति की चाह हो जिसे हम पाना चाहते हैं। राग का मतलब होता है कामना, लालसा। जैसे मेरे पास रुपये की कमी हो तो मैं रुपया चाहूँगा, अगर मकान नहीं है तो मैं मकान बनाना चाहूँगा, मेरे पास दो मकान नहीं है एक ही है तो मैं दूसरा मकान चाहूँगा, अगर बीमार हूँ तो स्वस्थ होना चाहूँगा। इच्छाओं का तो कोई अंत नहीं है, उसने हमें सदा के लिए रागी बना दिया। कितना भी मिल जाता है हम उसको पीछे समेट लेते हैं फिर हाथ पसार देते हैं। मुझे और चाहिए, उतना मिल जाता है फिर पीछे रख लेते हैं और बोलते हैं और चाहिए। उसने जब जीव बनाया तब उसकी तृप्ति हटा दी। इसके बाद काल से उसको बांध दिया। शिव के लिए भविष्य, वर्तमान और भूतकाल के विभाग नहीं हैं, समय भी उसके भीतर ही उत्पन्न हुआ है। लेकिन आप भविष्य में नहीं जा सकते, भूतकाल में नहीं जा सकते और भविष्य में एक सीमित गति से जा रहे हो, जिस गति से आपको समय बहता हुआ प्रतीत होता है। अगर आपने पहले कभी गलती की तो उस गलती को सुधारने भूतकाल में नहीं जा सकते। इस तरह हमको समय में बांध दिया गया। समय शिव को नहीं बांध सकता क्योंकि शिव से ही समय का अविर्भाव हुआ है, समय शिव का ही विकास है जो अंतरिक्ष का दूसरा पहलू है। यह बात ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले

कही था, अब बात विज्ञानसम्मत भी है कि समय बिना अन्तरिक्ष के नहीं रह सकता। अन्तरिक्ष का जन्म हुआ था तभी समय का भी जन्म हुआ था।

सापेक्षिकता और समय-अंतरिक्ष का रिश्ता

समय और अंतरिक्ष का रिश्ता आइन्स्टीन ने सिद्ध किया था। अंतरिक्ष के तीन आयाम हैं और समय चौथा आयाम है। तीन आयाम, डायमेंशन्स, अंतरिक्ष के हैं, एक आयाम समय है। समय के बहाव का अहसास प्रकाश की गति पर निर्भर है, अंतरिक्ष में हम समय की गति से बढ़ रहे हैं, लेकिन हम अंतरिक्ष में ज्यादा तेज गति से बढ़ेंगे तो हमारी समय की दिशा में गति कम होती चली जायेगी, ये दो गतियाँ विपरीत समानुपाती हैं और प्रकाश की गति के करीब पहुँचते पहुँचते समय थम सा जायेगा, अंतरिक्ष में किसी सन्दर्भ बिंदु के सापेक्ष हमारी गति शून्य है तो हम समय की गति से भविष्य की दिशा में बढ़ रहे हैं लेकिन जब हम अंतरिक्ष में सन्दर्भ बिंदु, जैसे हमारी पृथ्वी, के सापेक्ष ज्यादा तेजी से बढ़ेंगे तो पृथ्वी पर बीतने वाले समय के सापेक्ष हमारी समय की गति धीमी होती चली जाएगी। सैद्धांतिक रूप से जब हम प्रकाश की गति से चलने लगेंगे तो समय की दिशा में हमारी गति शून्य हो जायेगी। हम सब समय की दिशा में चल रहे हैं, अंतरिक्ष में हमारी गति बहुत कम होती है। प्रकाश की गति तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड है, इसकी तुलना में हमारी गतियाँ नगण्य सी ही हैं जिनसे

कोई अंतर नहीं आता लेकिन जब हमारी गति प्रकाश की गति के तुल्य तेज होती है तो हमारे लिए समय के व्यतीत होने की गति कम होती जाती है। दोनों गतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। जब कोई यात्री प्रकाश की गति के तुल्य तीव्र गति से चलने में सक्षम हो तो उस यात्री की उम्र अत्यंत धीमे बढ़ेगी, उसको तो यही महसूस होगा कि मेरी उम्र उसी गति से बढ़ रही है जिस गति से बढ़ना चाहिए, समय की गति तो उसको उतनी ही महसूस होगी लेकिन जब वह लौट कर पृथ्वी पर उन लोगों से मिलेगा जो नहीं चल रहे थे तो मालूम पड़ेगा कि यहाँ तो बीस पीढ़ियाँ बीत गयीं और मैं तो अभी एक बरस घूम कर आया! यह क्या हो गया? क्योंकि उसको तो समय की गति वैसी ही महसूस होगी जैसे पहले होती थी। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि अंतरिक्ष में हमारी गति प्रकाश की गति के जितने करीब पहुंचेगी हमारे लिए समय की गति कम होती जायेगी, धरती पर स्थित लोगों की तुलना में उम्र बढ़ना धीमे होता जायेगा।

क्या शिव को नापा तौला जा सकता है?

आज विज्ञान में जिसे हम कहते हैं स्पेसटाइम उसे ऋषिगण कहते थे "दिक्काल"। हमने पढ़ा था 'दिक्काल कलन विकलम्' याने हम उसको दिशा और काल से नहीं नाप सकते है। हम कई चीजों को काल से नापते हैं जैसे "वह दस साल का हो गया" "इसकी उम्र उन्नीस वर्ष है"। कई चीजों को अंतरिक्ष से नापते हैं जैसे "इसकी

ऊंचाई १७३ सेंटीमीटर है", "इस बर्तन में २ लीटर दूध समाएगा" आदि। हम शिव को दिशा और काल से नहीं नाप सकते कि उसकी उम्र कितनी है, इसकी ऊँचाई कितनी है, उसका भार कितना है, क्योंकि दिशाएँ उसी ने पैदा की हैं, दिशाओं की सीमा उसके अन्दर है, समय की सीमा भी उसके अन्दर है तो दिशाएँ और समय उसको कैसे नाप सकते हैं? अगर आप इस कमरे में कैद हों तो महेश्वर नगर की सीमा आप कैसे नाप सकते हो? आप तो उसके अन्दर बैठे हो, आप दिशाओं के अन्दर बैठे हो। आप समय से आच्छादित हो कर समय की कैद में हों तो समय की सीमा कैसे नाप सकते हो? क्योंकि समय तो उससे निकला है इसलिए शिव को टेप से या घड़ी से नहीं नाप सकते। 'दिक्काल कलन विकलम्' का मतलब है उसको हम दिशा और काल के द्वारा नापना चाहें तो नहीं नाप सकते क्योंकि वह इन सबका जनक है, वह समस्त पैमानों का जनक है, इन पैमानों के द्वारा उसको नापा नहीं जा सकता जैसे कोई भी पुत्र अपनी माता से बड़ा नहीं हो सकता। नियति अंतिम कंचुक है इसके द्वारा जीव को अंतरिक्ष में सीमित कर दिया गया, एक आकार में बांध दिया गया। अब हम उस आकार से बाहर नहीं जा पाते और हमको यह भ्रम पैदा कर दिया गया कि इस आकार के अन्दर तुम हो और बाहर संसार है। हमको ऐसा लगने लगा कि ये मैं हूँ और बाकी 'इदं' याने संसार है। इस "मैं" को शरीर में सीमित कर दिया गया। नियति के कारण ही यह भ्रम है कि वृक्ष बीज से आया है और बीज वृक्ष से! तो पहले कौन आया? सत्य

यह है कि बीज और वृक्ष दोनों ही चैतन्य की अभिव्यक्तियाँ हैं, एक दूसरे पर प्रतीत होती निर्भरता तो माया जनित भ्रम है।

शिव और जीव के बीच अंतर

इस तरह **कला, विद्या, राग, काल और नियति इन पांच कंचुकों द्वारा उत्पन्न अंतर ही शिव और जीव के बीच का अंतर है**। ये पांच अंतर न हों तो हम शिव हैं, हम चैतन्य स्वरूप हैं, लेकिन इन पांच सीमांकानों ने, इन पांच कंचुकों ने, हमको शिव से जीव बना दिया। ये पांच अंतर ही पांच आवरण हैं जिनके पार अगर हम देख सकें तो अपने सच्चे स्वरूप को देख सकते हैं। जब कबीरदास जी ने बोला था कि “घूंघट के पट खोल तुझे पिया मिलेंगे” तो उनके कहने का यही तात्पर्य है कि माया के इन आवरणों के बाहर अगर तुम देख सको तो तुम्हे अपने ईश्वर के दर्शन होंगे, अपने ईश्वर स्वरूप के दर्शन होंगे। इन पांच कंचुको के साथ माया ये छः तत्त्व हो गये। शुद्ध अध्वा वहाँ तक है जहाँ तक कि माया का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, शिव-शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या ये पांच शुद्ध तत्त्व हैं, विकास की यह राह ही शुद्ध अध्वा है। **इसके बाद एकतीस अशुद्ध तत्त्व हैं** जिनमें माया का प्रादुर्भाव हो गया विकास का यह मार्ग अशुद्ध अध्वा या अशुद्ध मार्ग कहलाता है। **योगी और शिव दोनों की दिशाएँ विपरीत हैं**, शिव संसार को बनाने के लिये अपरा की दिशा में चलता है, या कह सकते हैं कि वह अपना अवतरण करता है, शुद्ध अध्वा से

अशुद्ध अध्वा में प्रवेश करता है और योगी जब अपने शिवत्व को खोजता है तो वह आरोहण करता है वह शिवत्व की दिशा में चलता है, पर की दिशा में चलता है। इन पांच कंचुकों के बाद आते हैं पुरुष और प्रकृति। **सीमित जीव पुरुष है, यह जीव चेतना है, यही संसार के खेल का भोक्ता है**। प्रकृति पुरुष का भोग है जो मूल रूप से अव्यक्त होती है। प्रकृति पुरुष से ही उत्पन्न होती है। प्रकृति से जीव के भोग हेतु सृष्टि तथा शरीरों का निर्माण होता है। इन पांच पट्टियों के अन्दर बंधा हुआ जीवात्मा रूप पुरुष है जो है तो शिव लेकिन अपने शिवत्व को भूला हुआ है, अपने स्वयं के गौरव से अनजान है। उसके लिए अब इस ब्रह्माण्ड में खेलने के साधन बनाये गए जिनको वह सुख-दुःख रूप से भोगेगा, यही है व्यक्त प्रकृति। जो जीव चेतना है वही पुरुष है चाहे वह पशुओं में हो, चाहे मनुष्य में हो, चाहे पक्षी में हो। यहाँ स्त्री-पुरुष का भी भेद नहीं है समस्त जीवों की चेतना पुरुष कहलाती है। भोगना तब संभव है जब विभिन्न जीवों की आपस में तथा जड़ पदार्थों से अन्तर्क्रिया हो, इसके लिए उनके पास कुछ साधन चाहिए। इस अंतर्क्रिया के लिए उसे पांच ज्ञानेंद्रियाँ दी गयीं जिनके द्वारा उसे संसार की जानकारी मिलती है।

हम ज्ञानेन्द्रियों की कैद में हैं

ये सीमित जानकारियाँ हैं जो इन्द्रियाँ हमें परोसती हैं। इन्द्रियों से हमें द्वैत दिखाई देता है, यह आदमी बुरा है, यह आदमी बदमाश है, यह

मेरा दुश्मन है, यह मेरा प्रतिस्पर्धी है, यह मेरा दोस्त है, यह गोरा है, यह काला है, यह पास है, यह दूर है, इस प्रकार की ढेर सारी जानकारियाँ हमें मिलती हैं। हम इन्द्रियों की कैद में हैं। इनके माध्यम से हमें जो सीमित जानकारियाँ मिलती हैं वे ही हमारा संसार का ज्ञान होता हैं। उदाहरण के लिए हमारे कान २० हर्ट्ज याने २० आवृत्ति प्रति सेकंड से २० हजार आवृत्ति प्रति सेकंड के कम्पन को सुन सकते हैं इससे अधिक आवृत्तियाँ अल्ट्रासाउंड कहलाती हैं जो हम नहीं सुन सकते। अल्ट्रासाउंड का उपयोग चिकित्सा विज्ञान में सोनोग्राफी जांचों में होता है। हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इन पांच इन्द्रियों से पांच तरह की जानकारियाँ मिलती हैं। ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हमको जो ज्ञान लाकर देती हैं उसकी गणना कर सांसारिक अर्थ निर्धारण हेतु अंतःकरण है जिसके तीन घटक हैं मन, बुद्धि और अहंकार। मन विकल्प रखता है ये अच्छा है, नहीं नहीं ध्यान से देखो वह अच्छा नहीं है, वह बुरा है, वह गोरा है, काला है। मन सदा विकल्प पैदा करता है या कभी कहता है चलो-चलो चलते हैं, मन फिर विकल्प देगा चलो छोड़ो जाकर आराम करते हैं। इस तरह मन हमेशा दोहरे विकल्प देता है ऐसा करें? नहीं वैसा कर लें? लेकिन बुद्धि निश्चयात्मक है वह निर्णय ले लेती है "सब छोड़ो आज आश्रम चलते हैं"। बुद्धि आपकी आत्मा के अधिक करीब है आपके अस्तित्व से अधिक करीब है जो एक निर्णय ले सकती है कि हमको क्या करना है। श्रेय क्या है, प्रेय क्या है? प्रेय बुरी चीज है जो मुझे ईश्वर से दूर ले जायेगी 'अपर' की ओर ले जाएगी,

श्रेय मुझे परमेश्वर की ओर ले चलेगा इस तरह बुद्धि हमारी सारथी है वह हमको चाहे जहाँ ले जा सकती है। इसलिए आपकी बुद्धि अगर तामसी है तो आपको अपर की दिशा में ले जायेगी, बुद्धि अगर सात्विक है तो आपको पर की दिशा में ले जायेगी और राजसी है तो आपको भोग में उलझा देगी। इस तरह आपकी बुद्धि आपकी सारथी है वह जहाँ चाहे ले जा सकती है। इसके बाद आता है अहंकार, अहंकार याने आप अपने आपको कहाँ तक विकसित मानते हो।

हमारे अहंकार के तीन स्तर

अक्सर हम स्वयं को चमड़ी तक विकसित मानते हैं, इसलिए हमारी अहंता इस चमड़ी तक है, लेकिन अगर जो समझदार होगा वह समझेगा "नहीं नहीं मैं चेतना हूँ", यह शरीर तो छूट जायेगा मैं चेतना हूँ, शरीर मैं नहीं हूँ चेतना हूँ, तब हमारी अहंता ऊपर उठ जाती है उसको कहते हैं ईश्वर चेतना। जब यह अहंता पूर्ण शुद्ध हो जाती है तो हमको बोध होता है कि पूरा ब्रह्माण्ड मैं ही तो हूँ मेरे सिवा कोई है ही नहीं! चेतना के उस स्तर को कहते हैं शिव चेतना अथवा सार्वभौम ईश्वर चेतना। जो सबसे छोटी आरंभिक अहंता है वह यह कि हम इस चमड़ी के अन्दर हैं इसे **जीव चेतना** कहते हैं। इससे अधिक शुद्ध हमारी **ईश्वर चेतना** है, जब व्यक्ति का बोध होता हैं "मैं चेतन स्वरूप हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ" और सबसे उच्चतर चेतना है **शिव चेतना** याने "पूरा ब्रह्माण्ड मैं ही हूँ"। मात्र चेतना, मात्र मेरा शरीर या कई

शरीर नहीं वरन समस्त शरीर मैं ही हूँ, पूरा ब्रह्माण्ड मैं ही हूँ, यह है हमारी शिव चेतना। इस तरह हमारी चेतना के तीन स्तर हैं, जीव चेतना, ईश्वर चेतना और शिव चेतना। **अहंता का मतलब होता है कि मेरी स्वयं की दृष्टि मे मेरी क्या पहचान है**। सामान्यतः हम कहते हैं "मुझे चोट लग गयी" "मैं आज वहाँ जा रहा हूँ" याने हर तरह से इस चमड़ी के अन्दर जो है एक मांस का पिंड उसी की बात करते हैं। यह अहंता हमारी सीमित अहंता है। स्वयं को शरीर मान लिया। और एक होता है योगी वह शरीर को स्वयं की पहचान नहीं मानता, वह मानता है चेतना मैं हूँ, इस शरीर को कुछ भी हो जाये मुझे क्या लेना देना, मुझे कोई छू भी नहीं सकता। इस तरह मैं चेतन स्वरूप हूँ, एक शाश्वत सत्य हूँ, न मैं कभी जन्मा हूँ न कभी मरूँगा। इससे भी उच्चतर जो सर्वोच्च योगी होता है, वह जानता है कि यह ब्रह्माण्ड मैं हूँ। फिर उसके हृदय में सबके प्रति प्रेम, सबके प्रति करुणा जाग जाती है।

सर्वोच्च अहंता के अभिलक्षण

ऐसे योगी के बारे में हमनें शिवसूत्र में पढ़ा था "**विस्मयो योग भूमिकाः**"। वह सबको देखकर एक बच्चे की तरह विस्मय से भर जाता है, जैसे बच्चे को अगर बगीचे में ले जाओ तो बहुत खुश हो जाता है चाहे यह सुन्दर स्थान किसी विरोधी अथवा शत्रु का हो। **उसे सौन्दर्य तो दिखाई देता है लेकिन विरोध या शत्रुता दिखाई नहीं**

देती। इस तरह योगी हमेशा प्रसन्न रहता है और सबको देखकर स्वयं प्रसन्न होता है। खुशी किसी की भी हो उसमें वह स्वयं की खुशी देख लेता है, प्रत्येक संवेदना में स्वयं को शामिल कर लेता है। हमनें कई लोगो को देखा है जिन्हें कहते हैं "बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना", शादी किसी और की हो रही है, तू क्यों इतना खुश हो रहा है? लेकिन वह खुश हो रहा है क्योंकि उसके भीतर मात्र प्रसन्नता भरी है, वह उसको बेगाना मान ही नहीं रहा है। सचमुच प्रेम वह है जब आप स्वयं की अहंता को विकसित करते हुए उस तक ले जाओ तो उस अभिन्नता के अनुभव में बस प्रेम ही प्रेम है, किसी विरोधी संवेदना के लिये स्थान ही नहीं है। किसी को प्यार करने का मतलब यह नहीं कि उसको पज़ेस कर लो, स्वामित्व का दावा कर दो कि "ये मेरा है, दूसरे की तरफ नहीं देखेगा" जैसे यह रुपया मेरा है दूसरा कोई उसको हाथ नहीं लगा ले। यह प्यार नहीं डर है, यहाँ डर है कि मेरी वस्तु मुझसे दूर न हो जाये। लेकिन प्यार वह है जहाँ हम उसको अपना अस्तित्व का अंग मान लें, उसकी खुशी मेरी खुशी उसका दुःख मेरा दुःख, तब हम उसकी खुशी में अपनी खुशी शामिल कर लेते हैं। यही प्यार है, और जब यह प्यार पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाता है तो वह 'शिव-योगी' हो जाता है। उस समय उसके लिए 'सबका सुख मेरा सुख' और उस योगी में बच्चों जैसी सरलता रहती है। आप स्वयं की अंगुली के बारे में जैसा सोचते हो, वैसा ही वह योगी पूरे ब्रह्माण्ड के बारे में सोचता है। आप इस अंगुली को प्यार से साफ करोगे, इस पर

अगर चोट लगेगी तो मरहम पट्टी करोगे उसी तरह से वह ब्रह्माण्ड में सबको प्यार करेगा। एक सच्चा योगी वही है जिसकी अहंता पूरे विश्व में व्याप्त हो गयी।

पांच तन्मात्रायें और पांच महाभूत

अब अगली बात, इन पांच इन्द्रियों के लिए जानकारी लाने के लिए पांच तन्मात्रायें बनीं। कान के लिए बना शब्द, त्वचा के लिए बना स्पर्श, आँख के लिए बना रूप, जिह्वा के लिए बना रस, नासा के लिए बनी गंध। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध ये पांच तन्मात्रायें जीव के बाहर की जानकारियाँ लेकर आती हैं। ये सारे आकड़े बाहर से लाती हैं और इन आकड़ों को सम्बंधित इन्द्रियाँ आपके अन्तःकरण में प्रसारित करती हैं। लगातार आकड़े आते हैं कान से आते हैं, नाक से आते हैं, आँख से आते हैं, जिह्वा से आते हैं, त्वचा से आते हैं। आपको लगातार आकड़े मिलते हैं। आपके अंतःकरण पर आकड़ों की सतत बरसात होती है। अब अंतःकरण की मर्जी उनको कैसे उपयोग करना। कौन सी जानकारी सहेजना, कौन सी जानकारी की उपेक्षा कर देना, किस जानकारी पर तुरंत प्रतिक्रिया देना, कौन सी मिटा देना, यह अंतःकरण याने मन बुद्धि तथा अहंकार अपने अनुभव एवं व्यक्तित्व से तय करते हैं। इस तरीके से अंतःकरण में इन जानकारियों की सतत छटनी होती चली जाती है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनसे पांच तन्मात्रायें बनीं और इन पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूत

बने। जैसे शब्द से बना आकाश, शब्द तन्मात्रा आकाश में रहती है, स्पर्श से बनी वायु, स्पर्श तन्मात्रा वायु में रहती है, रूप से बना तेज या अग्नि, रूप का वास तेज में है, रस से बना जल, जल होगा तभी कहीं रस रहेगा बिना जल के रस कहाँ रहेगा। गंध को रहने के लिए बनी धरती। इस तरह पांच महाभूतों का जन्म हुआ। सबसे विरल तत्त्व है आकाश जिसमें मात्र शब्द है, आकाश में किसी तन्मात्रा को प्रश्रय देता है तो वह है शब्द लेकिन श्रवण के सिवाय किसी भी अन्य इन्द्रिय को उत्तेजित नहीं करता। इससे स्थूल तत्त्व है वायु जिसमें शब्द और स्पर्श दोनों हैं, यह हमारी श्रवण इन्द्रिय के अलावा त्वचा को भी संवेदना देता है लेकिन अन्य तीन इन्द्रियों को कोई संवेदना नहीं देता। अग्नि और भी स्थूल है जिसमें शब्द, स्पर्श और रूप तीनों का वास है। अग्नि में अंतरिक्ष भी है, वायु भी है और साथ ही रूप का आश्रय होने के कारण नेत्रेंद्रिय को संवेदना देने की क्षमता भी है। स्थूलता की अगली सीढ़ी पर है जल जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप के साथ रस भी है। जल हमारी घ्राणेन्द्रीय को छोड़ कर अन्य चारों इन्द्रियों को संवेदना प्रेषित कर सकता है। अंत में है धरती जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांचों तन्मात्राओं का वास है, इसलिए सबसे मोटा तत्त्व है। पृथ्वी समस्त इन्द्रियों को सन्देश दे सकती है। पृथ्वी ध्वनि को प्रसारित और परावर्तित भी करती है, त्वचा को स्पर्श का अनुभव भी देती है, इसका अपना रूप भी है और रसना के लिए भी पृथ्वी के पास संवेदनाओं का भण्डार है। पृथ्वी संसार में शिव की सबसे दूरस्थ अभिव्यक्ति है, इसमें

भिन्नता चरम पर है। शिव के सबसे अधिक निकट है वह है आपकी अपनी चेतना जिससे आप अपना विमर्श करते हो। इस तरह संसार के केंद्र में कौन है? आप स्वयं, आप स्वयं संसार के केंद्र में हो और ये धरती जो आपको आपके निकट दिखती है वह संसार क्रम में आपसे सबसे अधिक दूर है। इस पूरे विकास में अगर आप देखें तो ईश्वर यहाँ है और संसार भी यहाँ है।

संसार योगी की दृष्टि में

अब हम योगी की दृष्टि से देखें। यह संसार जिसे कभी कभी त्याज्य कहते हैं कितना त्याज्य है? जब उसे इस सृष्टि रचना का रहस्य ज्ञात है तो उसके लिए क्या त्याज्य है? शिव, शिवको कैसे और क्यों त्यागेगा? उस योगी के लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है। वह योगी यह भी जानता है कि कुछ भी कार्य होता है तो चेतना के निमित्त होता है जैसे अगर यहाँ पर आपके हस्ताक्षर हैं और बाद में आकर कोई देखता है तो यह कह सकता है कि इस दस्तावेज पर आपकी सहमति है। यहाँ पर एक कविता लिखी है तो मैं जानता हूँ कि कोई कवि था। एक रचना दिखती है मतलब रचनाकार उपस्थित था, और कब? इस रचना के पहले उपस्थित था। इसलिए किसी भी कार्य के पहले एक चेतन की उपस्थिति जरूरी है, बिना चेतना के कोई कार्य नहीं होता। इस ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ, ब्रह्माण्ड बनने के पहले क्या था? एक चेतना, उस चेतना के निमित्त इस ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ और चूँकि तब

उस चेतना के सिवा और कुछ था ही नहीं तो इस ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ किस चीज से? ब्रह्माण्ड का उपादान कारण क्या था? वही चेतना। हम उस चेतना को शिव कहते हैं। विश्व की प्रथम घटना की साक्षी होने के कारण चेतना अनादि कही जाती है, क्योंकि चेतना प्रथम घटना का कारण है। अगर उसका कोई स्रोत नहीं होता तो प्रथम घटना कैसी होती? प्रथम घटना को घटित करने के पीछे कोई तो था। यही हमारी परमेश्वर की अवधारणा है। यही शिव है।

बुद्धि से सनातनता का बोध क्यों नहीं होता?

अनादि काल की परिभाषा हमारे दिमाग में नहीं बैठती, इसलिए नहीं बैठती कि हम समय के आदि हो गए हैं, हमारा सोचना भी समय के अधीन है, हम काल नाम के कंचुक से आवृत्त हैं इसलिए हम अनादि का बोध बुद्धि से नहीं वरन ध्यान में ही प्राप्त कर सकते हैं। मात्र तर्क अथवा बुद्धि से अनादि का मतलब नहीं समझ सकते। यह संसार जिससे रूप लेता है फिर वापस उसीमें समा जाता है।

शिव का नृत्य

हम बोलते हैं "सर्वालयम् सर्वचराचरस्थम्" वह सब वापस उसी में समा जाता है, फिर से रूप लेता है फिर उसी में समा जाता है। यह ठीक पेंडुलम की **सरल आवृत्त गति** अथवा Simple harmonic motion की तरह है। जैसे पेंडुलम जब बीच में आता है तो उसकी

गति सर्वाधिक हो जाती है और जब एक ओर पहुँचता है तब क्षण भर को स्थिर हो कर लौटने लगता, परिधि पर जाकर उसकी गति शांत हो जाती है फिर वापस केंद्र कि तरफ भागता है और उसकी गति तेज हो जाती है, फिर नयी सृष्टि करता है। संसार ऐसा ही है, शिव का नृत्य है, नटराज का नृत्य है, शिव सूत्र कहते हैं '**नर्तक आत्मा**',उस नृत्य में वह जैसे स्वयं के केंद्र से दूर जाता है उसकी गति धीमी होती चली जाती है। केंद्र में सृष्टि की अभिव्यक्ति का पहला क्षण, प्रथम स्पंदन, जिसको हम बिगबेंग कह सकते हैं, वह पहला क्षण बहुत विस्फोटक था। उपनिषदों के अनुसार हिरण्यगर्भ स्वर्ण आवरण से आवृत्त था जिसके अनावृत्त होते ही सृष्टि का जन्म हो गया। पहले क्षण में जिस तेज गति से ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ उसके बाद में वह गति कम होती चली गयी कम होते होते एक दिन आयेगा जिस दिन यह गति शून्य हो जायेगी तब ब्रह्माण्ड वापस सिकुड़ने लगेगा सिकुड़ते सिकुड़ते जैसे ही केंद्र के निकट आयेगा उसकी गति अत्यंत तेज हो जायेगी इतनी तेज हो जायेगी कि इसमें समस्त अन्तरिक्ष भी समा जायेगा, समय भी समा जायेगा सूर्य, चंद्रमा, तारे, धरती सब कुछ सिमट कर एक बिंदु में समा जायेंगे, वह शून्य आयाम हो कर शुद्ध शिवस्वरूप हो जायेगी। इस तरह से यह ब्रह्माण्ड भी एक सरल आवृत्त गति याने सिंपल हार्मोनिक मोशन करता है। उस बिंदु में फिर महाविस्फोट होता है क्योंकि समस्त उर्जा उसमें समाहित है, समस्त दिक्काल याने स्पेसटाइम उसमें समाया हुआ है। इस तरह पुनः नयी

सृष्टि का निर्माण होता है। एक ऑस्ट्रियन मूल के अमेरिकन भौतिकशास्त्री हैं फ्रित्जोफ़ केप्रा जिन्होंने एक किताब लिखी थी उसका नाम है "ताओ ऑफ़ फिजिक्स"। यह किताब १९७६ में प्रकाशित हुई थी, इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर नटराज का चित्र है। (इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद श्री धर्मराज वाघेला ने "भौतिकी का सत्पथ" नाम से किया है जो २०१४ में प्रकाशित हुआ है।) नटराज का नृत्य ब्रह्माण्डीय नृत्य का प्रतीक है। यह संसार शिव का नृत्य है, इस संसार रचना को जब तक उसे रखना है वह रखेगा, उसके बाद इसका संहार होना तय है, यही शिव का नृत्य है। और वह शिव आप स्वयं हो, आप ही वह केंद्र हो जिसके आसपास ब्रह्माण्ड नाच रहा है, आपकी चेतना ने ही संसार का निर्माण किया है। हर घटना चेतना के निमित्त घटती है तो हम ऐसा न समझ लें कि वह घटना महत्वपूर्ण है और हम उसके मूक दर्शक हैं! नहीं आप मूक दर्शक नहीं हो, घटना आपके निमित्त घटी है क्योंकि चेतन आप हो आपका जड़ परिवेश नहीं। **आप किसी घटना के दर्शक नहीं हो, घटना का कारण हो**। यह बात हमारी बुद्धि में थोड़ा धीरे बैठती है। हमारी समझ की सबसे बड़ी दुश्मन है हमारी कॉमनसेन्स याने सामान्य बुद्धि। क्योंकि उस कॉमनसेन्स को हमनें इस सीमित जीवन के अन्दर ही अपनाया है और उस कॉमनसेन्स से उस विशालता को समग्रता से समझ पाना कठिन काम है। माया पर आश्रित बुद्धि से सत्य को समझना संभव नहीं। जब हम सामान्य बुद्धि को त्याग देंगे तभी खुली दिशा से सोच सकेंगे।

हमनें अभी पढ़ा कि शिव-शक्ति सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध-विद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल और नियति, पुरुष और प्रकृति, अंतःकरण के तीन तत्त्व मन, बुद्धि, अहंकार, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच तन्मात्रायें तथा पांच महाभूत ये कुल ३६ तत्त्व हैं। इन ३६ तत्त्वों के द्वारा ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। ३६ तत्त्वों में शिव-शक्ति केंद्र हैं याने 'पर' हैं बाकी सब 'अपर' हैं। उस 'पर' का बोध पाने का प्रथम सोपान है पराप्रावेशिका याने पर में प्रवेश का विज्ञान। परा प्रवेश के लिए इन ३६ तत्त्वों को समझना जरूरी है, इन ३६ तत्त्वों को हम बार बार इसीलिए समझने का प्रयास करते हैं। यही सृष्टि की समझ का आधार है। छत्तीस तत्त्वों का अध्ययन हम लोगों के हृदय में प्रेरणा पैदा करता है कि हमको शिव की ओर जाना है, केंद्र की ओर जाना है जो मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। ३६ तत्त्वों का ज्ञान अध्यात्म की राह प्रकाशित कर देता है केंद्र का आकर्षण उत्पन्न कर देता है। यही ''परा'' में प्रवेश है।

जीवनमुक्त मनुष्य

जो मनुष्य अपने ईश्वरदत्त अथवा गुरुदत्त विवेक का उपयोग कर सृष्टि को शिव की तरह देखता है, सृष्टि को एक इकाई जानता है और इस ज्ञान के अनुकूल व्यवहार करता है वह जीतेजी ही मुक्त है, मोक्ष पा चुका है। ऐसा योगी जीवनमुक्त कहलाता है। गुरु नारायण......

हरिहर त्रिक आश्रम महेश्वर के आरंभिक दिवस।

माँ प्रभा देवीजी हरिहर त्रिक
आश्रम में मार्च 2011

१. पूज्य बाबा देवीशंकरजी चट्टोपाध्याय

२. पूज्य गुरुदेव हरिविलासजी आसोपा (आपसा)

३. ईश्वर स्वरूप पूज्य लक्ष्मणजू महाराज